भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

महिष्मति नगरी इन्दौर राज्य में नर्मदा तट पर सुशोभित थी । वर्तमान में खण्डहरोँ से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय विशेष विभूतियों से विभूषित थी । जो वर्तमान में माहेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है । मण्डन मिश्र वहीं रहते थे । ऐसा लिखा है । मण्डन मिश्र के विषय में विद्धजन एकमत नहीं हैं । आचार्य शंकर ने अपने दिग्विजय के क्रम में आकाश मार्ग से उतर कर जब उस नगरी अर्थात महिष्मति नगरी की शोभा को देखा । तो अति विस्मित हुए । उस नगरी की बड़ी बड़ी अट्टालिकाएँ विविध रत्नों से सुसज्जित होकर चमक रही थीं । और दर्शकों की आँखों को बर्बस चकाचौंध कर रही थीं । आचार्य शंकर आकाश से उतरते ऐसे प्रतीत हुए थे । मानो भगवान विष्णु के अवतार परशुराम कार्तवीर्य को पराजित करने के लिये उतरे हों । नर्मदा का शीतल जल तथा सुगन्धित कमलों के सौरभ से परिपूर्ण वायु आचार्य शंकर की थकावट दूर करने लगी । आचार्य ने वहाँ नदी तट पर शिव मन्दिर में थोड़ा विश्राम कर नित्य कृत्य समाप्त किया । तदन्तर मध्याह्न के समय मण्डन मिश्र के घर की ओर चल पड़े । मार्ग में मण्डन मिश्र की दासियाँ, जो परस्पर संस्कृत में वार्तालाप करती हुई नदी से जल लेने जा रही थीं । उनसे आचार्य शंकर ने पूछा - मण्डन मिश्र का घर कहाँ है ?

आचार्य शंकर का दर्शन कर दासियाँ भी विभोर हो गईं और सविनय उत्तर दिया -

स्वतः प्रमाण परतः प्रमाण कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।

द्वारस्थनीडान्तरसन्निरीद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ।

फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

द्वारस्थनीडान्तरसन्निरीद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ।

जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।

द्वारस्थनीडान्तरसन्निरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ।

अर्थात - जिस द्वार पर टंगे पिजरों के भीतर बैठी मैनाएँ वेद अर्थात श्रुति स्वतः प्रमाण है । अथवा परतः प्रमाण । कर्म का शुभाशुभ फल कर्म देता है । अथवा ईश्वर । जगत ध्रुव है । अथवा अध्रुव ? इस बात पर विचार कर रही हो । उसे आप मण्डन मिश्र पण्डित का घर जानिये ।

दासियों से इस प्रकार वचन सुन आचार्य शंकर मण्डन के घर गये । परन्तु उस समय घर का द्वार बन्द था । मार्ग में दर्शक लोग उस अल्प वयस्क यतिवर का दर्शन कर मुग्ध होने लगे । तथा उनके मुख मण्डल से किसी विशेष अवतारी पुरुष की अलौकिकता का अनुभव करने लगे ।

तपोमहिम्नैवतपोनिधानं स जैमिनि सत्यवतीतनूजम ।

यथाविधि श्राद्धविधौ निमन्त्र्य तत्पादपद्मान्यवनेजयन्तम ।

उस समय मण्डन मिश्र श्राद्ध कर रहे थे । तथा अपने तपोवल से महर्षि व्यास, जैमिनि दोनों मुनियों को इस श्राद्ध विधि में आमन्त्रित कर उनके पाद पद्मों का अर्चन आदि कर रहे थे ।

तत्रान्तरिक्षादवतीर्य योगिवर्यः समागम्य यथार्हमेषः ।

द्वैपायनं जैमिनिमप्युभाभ्यां ताभ्यां सहर्षं प्रतिनन्दितोऽभूत ।

योगिराज आचार्य शंकर ने आकाश मार्ग से आँगन में उतर कर दोनों मुनियों का अभिनन्दन किया । उन दोनों मुनि श्रेष्ठों ने भी उनका सहर्ष अभिनन्दन

किया । मण्डन मिश्र स्वयं कर्मकाण्ड के बड़े रसिक थे । उस समय आकाश मार्ग से उतरे हुए तथा दोनों मुनियों के साथ शिखा सूत्र रहित जब सन्यासी को देखा । तो उनके क्रोध का ठिकाना न रहा । क्योंकि कुछ विद्वान लोग श्राद्ध के अवसर पर संन्यासी का आना निषिद्ध मानते हैं । जबकि यह शास्त्र विरुद्ध है । आचार्य सर्वज्ञ शंकर उनकी यह अवस्था देख विस्मित हो गये ।

मण्डन मिश्र ने क्रोध भरी दृष्टि से यतिन्द्र शंकर की ओर देखते हुए कहा - कुतोमुण्डश्चागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छ्यते मया ।

किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि ।

- कुतो मुण्डी ? (हे मुण्डी ! कहाँ से आये ?) यहाँ मुण्डी शब्द संन्यासी के प्रति अनादर सूचक सम्बोधन है ।

इस वाक्य दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि कहाँ से मुण्डित हो ? आचार्य शंकर ने दूसरे अर्थ को मन में रखकर कहा - आगलात मुण्डी अर्थात गले तक मुण्डन है ।

अरे ! मैं मुण्डन के विषय में नहीं पूछता । किन्तु -

पन्थास्ते पृच्छ्रयते मया,

मण्डन मिश्र आचार्य से कहते हैं - मैं आपके मार्ग के विषय में पूछता हूँ कि आप आये कहाँ से ?

तब आचार्य शंकर ने मुस्कुराते हुए कहा - किमाह पन्थाः ? मार्ग से पूछे जाने पर उसने क्या उत्तर दिया ?

मण्डन मिश्र ने चिढ़कर **त्वन्माता मुण्डा** (मार्ग ने मुझे उत्तर दिया कि तुम्हारी माता मुण्डा है ।)

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

आचार्य शंकर स्वामी कहते हैं - बहुत ठीक, **इत्याह तथैव हि** (तुमने ही मार्ग से पूछा है । इसलिए वह उत्तर भी तुम्हारे लिए ही होगा । अर्थात तुम्हारी माता मुण्डा संन्यासनी है । हमारी माता नहीं ।)

आचार्य के वचन को सुनकर **मण्डन मिश्र ने कहा -**

अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर ।

किं त्वं जानासि तद्वर्णमहंवर्ण भवान रसम् ।

क्या तुमने सुरा अर्थात मदिरा पी है ? मदिरा पीने वाला ही इस प्रकार की बातें करते हैं । पीता शब्द का दूसरा अर्थ पीला रंग भी होता है । उसको मन में रखकर आचार्य शंकर ने कहा कि सुरा तो श्वेत होती है । पीली नहीं ।

मण्डन मिश्र कहते है - वाह ! तुम तो उसके रंग को भी जानते हो !

शंकर स्वामी कहते हैं - मैं तो केवल उसका रंग ही जानता हूँ । लेकिन आप तो उसके रस को भी जानते हैं । **अतः सुरां न पिवेत** (सुरा - मदिरा मत पियो) इस निषिद्ध वाक्य से आप पाप के भागी हैं । मैं नहीं । क्योंकि मैं केवल रंग को जानता हूँ ।

आचार्य पर चिढ़ते हुए क्रोध में आकर **मण्डन मिश्र कहते हैं** -

कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभेनापि दुर्वहाम ।

शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति ।

हे दुर्बुद्धे ! जब तुम गदहे द्वारा भी न ढोने योग्य कन्था ढो रहे हो । तो शिखा और यज्ञोपवीत जनेऊ में कितना भार है । जो तुमने उनको त्याग दिया है ।

आचार्य शंकर कहते हैं -

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्रापि दुर्भराम ।

शिखायज्ञोपवीताभ्यामं श्रुतेर्भारो भविष्यति ।

शिखां यज्ञोपवीतं चेत्येतत्सर्वं भूःस्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विच्छत । प्राणसंघारणाथ यथोक्तकाले विमुक्तो भैक्षमाचरन्मुदरपात्रेण । जाबाल 6

हे दुर्बुद्धे ! तुम्हारे पिता तो गृहस्थ थे । अतः उनके द्वारा भी ढोने के अयोग्य कन्था को तो मैं अवश्य ढो रहा हूँ । परन्तु शिखा और यज्ञोपवीत तो श्रुति के लिए महान भार होगा । क्योंकि यह श्रुति संन्यासी होने पर शिखा और सूत्र के त्याग का विधान करती है ।

किञ्च - परीक्ष्य लोकान्कर्मचित्तान्ब्राह्मणो निर्वेदमायात (कर्मों से सम्पादित लोकों - फलों का परीक्षण कर अर्थात अनित्य अनुभव कर ब्राह्मण वैराग्य को प्राप्त हो)

यदहरेव विरजेतदहरेव प्रव्रजेत । जाबाल खण्ड 4 (जिस दिन वैराग्य हो । उस दिन संन्यास ग्रहण करे)

ब्रह्मचार्याद्वा गृहाद्वा वनाद्वा (ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्थाश्रम से अथवा वानप्रस्थाश्रम से संन्यास ग्रहण करे)

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागैनैके अमृतत्वमानशुः । महा नारायण उपनिषद 10/5 (1 शाखा वाले ऐसा कहते हैं - न कर्म से । न प्रजा से । न धन से अमृतत्व प्राप्त होता है । किन्तु त्याग से ही प्राप्त होता है)

अथ परिव्राड् विवर्णवासा मुण्डोऽपरिग्रहः । जाबाल 5 आदि श्रुति वाक्यों में ब्रह्म ज्ञान के लिए संन्यास ग्रहण करने का स्पष्ट निर्देश है । यदि शिखा सूत्र का विधिवत परित्याग कर संन्यास ग्रहण न किया जायगा । तो उक्त श्रुति का निर्वाह नहीं हो सकेगा । अतः शिखा सूत्र श्रुति के लिए भारभूत है । श्रुति को

भार से मुक्त करने के लिए संन्यास ग्रहण करना बुद्धिमता है । दुर्बुद्धि तो तुम हो । जो ऐसा नहीं किया है ।

शंकर के वचन को सुन **मण्डन मिश्र कहते हैं** - तुमने यत्न से गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि इन तीनों श्रौत अग्नियों को अपने घर से हटा दिया है । संन्यास ग्रहण के कारण । अतः तुमको इन्द्र हत्या पाप लगेगा । **वीरहा वा एष देवानां योऽग्नीनुद्वासयति,** अग्नियों को दूर हटा देने वाला व्यक्ति इन्द्र आदि देवों की हत्या करने वाला होता है ।

आचार्य शंकर मण्डन को ललकारते हुए कहते हैं - ब्रह्म तत्त्व को न जानने वाला आत्महत्या **को प्राप्त होता है । असन्नेव स भवत्यसद्ब्रह्मेति चेद्वेद,** ब्रह्म असत है । नहीं है । यदि ऐसा जानता है । तो वह असत ही हो जाता है ।

असूर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृताः ।

ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चाऽत्महनो जनाः । । ईशावास्योपनिषद 3

मण्डन को श्रुति प्रमाण देते हुए कहते हैं - वे लोक असूर्य कहे जाते हैं । क्योकि घोर अज्ञान अंधकार से आवृत्त हैं । उन लोकों को मरकर वे ही प्राप्त हैं । जो आत्म हत्यारे लोग हैं । अर्थात अपने आत्म स्वरूप को नहीं जानते । स्मृतियों में भी इसी अर्थ को कहा गया है -

अन्यथा सन्तमात्मानं योऽन्यथा प्रतिपद्यते ।

किं ते न कृतं पापं चौरेणाऽत्मापहारिणा ।

अर्थात - सत् चित् आनन्द स्वरूप आत्मा को जो असत जड़ दुःख रूप समझता है । उस आत्म अपहरण करने वाले चोर ने कौन सा पाप नहीं किया ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

मण्डन ने आचार्य पर क्रोध करते हुए कहा - हमारे घर के द्वारपालों को वंचित कर चोर की तरह तुम कैसे घुस आये ?

मण्डन को आचार्य ने कहा - अरे ! भिक्षुओं को बिना दिये चोर की तरह तुम अन्न कैसे खा रहे हो ?

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः ।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्कते स्तेन एव सः । भगवदगीता 3/11

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्धस्वामिदुभौ ।

तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत ।

जो यति, ब्रह्मचारी, देव को न देकर स्वयं अन्न खाता है । वह चोर है । चान्द्रायण व्रत करे ।

क्व ब्रह्म क्व च दुर्मेधाः क्व संन्यासः क्व वा कलिः ।

स्वाद्वन्नभक्षकामेण वेदोऽयं योगिनां धृतः ।

मण्डन कहते है - कहाँ वह ब्रह्म । कहाँ वह दुर्बुद्धि । कहाँ वह संन्यास । कहाँ यह कलियुग । स्वाद अन्न भोजन की इच्छा से तुमने यह योगियों का वेष धारण किया है ।

शंकर कहते हैं -

क्व स्वर्गः क्व दुराचारः क्वाग्निहोत्रं क्व वा कलिः ।

मन्ये मैथुनकामेन वेषोऽयं कर्मिणां घृतः ।

कहाँ स्वर्ग । और कहाँ दुराचार । कहाँ अग्निहोत्र । और कहाँ कलियुग । मैथुन की इच्छा से ही तुमने यह कर्मियों का वेष धारण किया है ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

मण्डन कहते हैं -

अश्वालम्बं गवालम्बं संन्यासं पलपैतृकम ।

देवरात्सुतोत्पत्तिं पञ्च कलौ विर्जयेत ।

अर्थात - अश्वालम्ब, गवालम्ब, संन्यास, श्राद्ध में पितरों को मांस पिण्ड, देवर से पुत्र की उत्पत्ति । ये कलियुग में वर्जित हैं ।

आचार्य शंकर ने पराशर स्मृति का प्रमाण देते हुए कहा - जब तक वर्ण विभाग है । जब तक वेदो का प्रचार है । तब तक कलियुग में संन्यास और अग्निहोत्र का विधान है ।

यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वेदः प्रवर्तते ।

संन्यासमग्निक्षेत्रं च तावदस्ति कलौ युगे । पराशर स्मृति

शंकर द्वारा शास्त्र प्रमाण देने पर **मण्डन ने बहुत सारे दुर्वाक्य प्रयोग किया -**

किं जडो जडता देदे भोतिके न चिदात्भनि ।

किमभाग्योऽसि यत्यर्चारसितोऽभाग्यउच्यते ।

किं दूषकोऽसि पापेन दुषितो जायते नरः ।

चोरैरुपाश्रितः किं त्वं स तु षड्र्वर्गपीडितः ।

अप्रार्थितः किमर्थं त्वं समायतो गृहे मम ।

तव भाग्यवशाद्विष्णुरहमत्र समागतः ।

मण्डन द्वारा क्रोध से अहंकार सहित वचन कहे जाने पर आचार्य शंकर उस

उस वाक्य का उत्तर बड़ी सुन्दर रीति से कौतूहल से दे रहे थे ।

मण्डन मिश्र को क्रोध पूर्ण वचन बोलते हुए जैमिनि मुनि मुस्कुराते हुए देख रहे थे ।

तब भगवान व्यास ने कहा - हे वत्स ! तीनों प्रकार की ऐषणाओं का परित्याग करने वाले, तथा आत्म तत्व को जानने वाले, ऐसे संन्यासी के प्रति तुम दुर्वचन बोल रहे हो । यह अनिन्दित आत्माओं का आचारण नहीं है । अर्थात क्या यह आचरण तुम्हारे अनुरूप है ? व्यास देव कहते है -

अभ्यागतोऽसौ स्वयमेव विष्णुरित्येव मत्वाऽशुनि मन्त्रय त्वम ।

इत्याश्रवं ज्ञाविधिं प्रतीतं सुध्यग्रणीः साध्वशिषन्मुनिस्तम ।

यह अतिथि स्वयं विष्णु भगवान हैं । ऐसा जानकर तुम इन्हें शीघ्र निमन्त्रण दो । इस प्रकार श्रेष्ठ बुद्धिमानों में अग्रणीय आचार्य व्यास ने विधि को जानने वाले उन प्रसिद्ध पण्डित मण्डन मिश्र को शिक्षा दी ।

व्यास मुनि की शिक्षा के अनन्तर पण्डित मण्डन भी शान्त मना होकर जल का आचमन आदि करके व्यास मुनि की आज्ञा अनुसार शास्त्रवित् मण्डन ने महर्षि शंकर की पूजा कर भिक्षा के लिये निमन्त्रण दिया ।

आचार्य शंकर बोले – हे सौम्य ! मुझे साधारण अन्न की भिक्षा में कोई आदर नहीं है । मैं विवाद रूप भिक्षा लेने की इच्छा से आपके पास आया हूँ । परन्तु शर्त यह है कि परस्पर शिष्य रूप से भिक्षा देनी स्वीकार करनी चाहिए । अर्थात जो पराजित होगा । वह दूसरे का शिष्य बन जायेगा ।

शंकर भगवत्पाद कहते है -

मम न किंचिदपि ध्रुवमीप्सितं श्रुतिशिरः पथविस्तूतिमन्तरा ।

अवहितेन मखेष्ववधीरितः स भवता भवतापहिमद्युतिः ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

वेदान्त मार्ग के विस्तार के बिना मुझे कोई भी निश्चित इष्ट नहीं है । संसार रूपी ताप को शान्त करने के लिये चन्द्रमा के समान है । वेदान्त की महिमा अलौकिक है । परन्तु मुझे इस बात का खेद है कि यज्ञ आदि में निरत होकर आपने इसकी अवहेलना की है । अब मैं सभी वादियों को जीतकर इस वेदान्त मार्ग का विस्तार करूँगा । अतः तुम भी मेरे इस उत्तम मत को स्वीकार कर लो । अथवा मुझसे विवाद करो । या कहो कि मैं तुमसे पराजित हुआ हूँ ।

यतिराज शंकर का यह सारगर्भित वचन सुनकर इस नवीन पराभव से विस्मित हो महा यशस्वी मण्डन मिश्र अपने गौरव में स्थित होकर बोले -

अपि सहस्रमुखे फणिनामके न विजितस्त्विति जातु फणत्ययम ।

न च विहाय मतं श्रुतिसंमतं मुनिमते निपतेत्परिकल्पिते ।

यदि सहस्र मुख वाला शेषनाग भी शास्त्रार्थ के लिये आ जाय । तो भी मैं यह नहीं कह सकता कि मैं हार गया । भला मैं श्रुति सम्मत कर्म काण्ड को छोड़कर कल्पित व्यास मत ? अथवा तुम्हारा मत कभी मान सकता हूँ ? मेरे हृदय में बहुत दिनों से शास्त्रार्थ करने की प्रवल इच्छा थी । किन्तु प्रतिद्वन्द्वी न मिलने के कारण ऐसे ही रहा । आज तो स्वयं विजय महोत्सव हमारे लिए उपस्थित हुआ है । शास्त्र जो पर्याप्त परिश्रम किया गया है । वह आज सफल हो । यदि भूतल पर सुधा स्वयं उपस्थित हो । तो क्या उसका त्याग किया जा सकता है ? मैं साधारण व्यक्ति नहीं हूँ । मैं **मृत्योर्यस्योपसेम्** मृत्यु भी जिसके लिये उपसेचन है । इस श्रुति सिद्ध यम के विनाशक ईश्वर का भी खण्डन करने वाला हूँ । वेदान्ती लोग कर्म फल दाता ईश्वर मानते हैं । परन्तु मैंने यह सिद्ध कर दिया है - फल दाता स्वयं कर्म है । इसमें ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं ।

हे यतिवर ! राजहंस की ध्वनि के समान मधुर अपनी वाणी से मेरे साथ शास्त्रार्थ करो । दुर्हृदयों के गर्व रूपी वन को नष्ट करने में कठोर कुठार के

तुल्य समस्त शास्त्रों के मर्म को जानने वाली मेरी पटुता क्या आपके कानों तक नहीं पहुँची ? जिससे आप शास्त्रार्थ की भिक्षा चाहते हैं । हे मुनि ! यदि आप शास्त्रार्थ विषयक वाद देने की इच्छा करें । तो मैं भिक्षा करूँगा । आपका यह कथन अल्प है । शास्त्रार्थ करने के लिये तो मैं सतत उद्यत हूँ । मुझे तो यह चिरकाल से इच्छा रही है । परन्तु मैं क्या करता । जब कि कोई शास्त्रार्थ करने वाला ही नहीं मिला । ये यतिवर ! मैं शास्त्रार्थ के लिए बिलकुल तैयार हूँ । लेकिन जय पराजय का निर्णय करेगा कौन ? शास्त्रार्थ का यह नियम है कि वादी और प्रतिवादी एक दूसरे के विरुद्ध पक्ष का ग्रहण करते हैं । और एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने का यत्न करते हैं । अतः आप बतलाइये कि हम दोनों की प्रतिज्ञायें क्या होंगी ? कौन सा प्रमाण आपको स्वीकृत है । इस विषय में आपका क्या अभिप्राय है ? हम दोनों का मध्यस्थ भी निर्णित होना चाहिये । और यह विवाद कल से आरम्भ हो । क्योंकि आज मध्याह्न कृत्य पूर्ण करने हैं ।

इस पर शंकर स्वामी ने मुस्कुराते हुए विवाद की स्वीकृति दे दी और व्यास और जैमिनि को मध्यस्थ होने की प्रार्थना की ।

विधाय भार्यां विदुषीं सदस्यां विधियतां वादकथा सुधिन्द्र ।

इत्थं सरस्वत्यवतारताज्ञौ तद्धर्मपत्न्यास्तमभाषिषाताम ।

तब दोनों मुनियों व्यास और जैमिनि ने कहा - हे विद्वत शिरोमणि ! मण्डन की विदुषी भार्या उभय भारती को मध्यस्थ स्वीकार कर आप लोग शास्त्रार्थ करें । वह साक्षात सरस्वती का अवतार है । वह शास्त्रार्थ का निर्णय उचित रीति से करेगी । मण्डन मिश्र ने इस बात का अनुमोदन किया और प्रकृत कार्य में लग गये ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

मिश्र ने भाग्य से प्राप्त श्रौत अग्नि तुल्य तीनों मुनि का विधिवत पूजन किया । भोजन कर लेने के पश्चात तीनोँ मुनियों का प्रसन्न मन से उपनिषद् पर कुछ विचार हुए । तदन्तर तीनों मुनि घर से बाहर निकले । व्यास और जैमिनि तो अन्तर्धान हो गये और शंकर स्वामी ने शिष्यों सहित नर्मदा तट पर शिव मन्दिर में वास किया । शंकर स्वामी ने दैवयोग से गुरु लोगों का दुर्लभ दर्शन पाया । उनकी अमृत तुल्य कथा अपने सब शिष्यों को सुनाते रात बिताई । प्रातःकालीन कृत्य से निवृत्त होकर शंकर स्वामी शिष्यों के साथ मण्डन मिश्र के घर सभा मण्डप में पधारे । शंकर और मण्डन दोनों ही महा पण्डित थे । समग्र देश में दोनों की ख्याति प्राप्त थी । दोनों के शास्त्र विषयक चर्चा सुनकर बहुत पण्डित तथा विद्वगण अधिक संख्या में आकर उपस्थित हुए ।

पण्डितवर मण्डन मिश्र के विशाल भवन में शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया । बहुत से विद्वान तथा पण्डित लोग उत्साह के साथ शास्त्रार्थ सभा मण्डप में श्रोता के रूप में उपस्थित हुए । आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के आग्रह से उभय भारती { शारदा } ने मध्यस्थ पद को सुशोभित किया ।

पत्या नियुक्ता पति देवता सा सदस्यभावे सुदती चकाशे ।

तयोर्विवेक्तुं श्रुततारतम्यं समागता संसदि भारतीय ।

अर्थात् पति के द्वारा मध्यस्थ बनने के लिए आग्रह किये जाने पर सुन्दरी शारदा देवी ने वह पद ग्रहण किया । उनकी शोभा देखने योग्य थी । ऐसा लगता था । मानों दोनों विद्वानों के शास्त्रार्थ के तारतम्य का निर्णय करने के लिए स्वयं सरस्वती समा मण्डप में पधारी हो । यह नारी जाति के लिए महान गौरव की बात थी । इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में योग्य नारियों का समाज में सम्मानित स्थान रहा है ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

आचार्य शंकर की प्रतिज्ञा

ब्रैह्मैकं परमार्थसच्चिदमलं विश्वप्रपञ्चात्मना

शुक्ती रूप्यपरात्मनेव बहलाज्ञानावृतं भासते ।

तज्ज्ञानान्निखिलप्रपञ्चनिलया त्वात्मव्यवस्थापर

निर्वाणं जनिमुक्तमम्युपगतं मानं श्रुतेर्मस्तकम ।

शंकर ने प्रतिज्ञा किया -ब्रह्म सत् चित् निर्मल तथा परमार्थ है । जैसे मिथ्या ज्ञान से सीप रजत रूप में भासती है । वैसे ही सत, चिद आनन्द स्वरूप ब्रह्म मिथ्या अनादि अज्ञान से इस दृश्यमान प्रपञ्च रूप से भासित होता है । जब इसे तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि आदि उपनिषद वाक्यों द्वारा जीव ब्रह्मैक्य ज्ञान उत्पन्न होता है । तब अनादि कारण मिथ्या ज्ञान सहित यह समस्त प्रपञ्च निवृत्त हो जाता है । और यह अपने असली चिन्मय स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जन्म मरण से रहित होकर मुक्त हो जाता है । यही हमारा सिद्धांत है । इसमें उपनिषद प्रमाण है । मैं फिर अपने इस कथन को दुहराता हूँ । जीवब्रह्मैक्य { जीव ब्रह्म 1 है } मेरा विषय है । उसमें उपनिषद वाक्य प्रमाण हैं । **एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म { छान्दोग्य 6/2/1 } सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म { तैतरेय 2/1/1 } सर्वँ खल्विदं ब्रह्म { छान्दोग्य 3/14/1 } विज्ञानमानन्दं ब्रह्म { बृहदारण्यक 3/9/28 } ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति । ब्रह्मविदाप्नोति परम । वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृतिकेत्येव सत्यम । तत्र को मोहः कः शोकः एकात्मनुपश्यतः** इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं ।

आचार्य आगे कहते हैं -

बाढं जये यदि पराजयभागहं स्यां

संन्यासमङ्ग परिहृत्य कषायचैलम ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

शुक्लं वसीय वसनं द्वयभारतीयं

वादे जयाजयफलप्रतिदीपिकास्तु ।

जय निश्चित होने पर भी यदि मैं इस विवाद में पराजय का भागी हुआ । तो हे प्रिय ! इस कषाय वस्त्रों सहित संन्यास को छोड़कर श्वेत वस्त्र धारण करूँगा । इस विवाद में जय तथा पराजय रूप फल की निर्णायक यह उभय भारती हो । यति श्रेष्ठ शंकर के द्वारा इस प्रकार अपनी उदार { जीव ब्रह्मैक्य } प्रतिज्ञा किये जाने पर गृहस्थ श्रेष्ठ विश्व रूप मण्डन मिश्र ने भी अपने मत की प्रतिष्ठापक प्रतिज्ञा की ।

मण्डन मिश्र की प्रतिज्ञा-

वेदान्ता न प्रमाणं चितिवपुषि पदे तत्र सङ्गात्ययोगात

पूर्वो भागः प्रमाणं पदचयगमिते कार्यवस्तुन्यशेषे ।

शब्दानां कार्यमात्रं प्रति समधिगता शक्तिरभ्युन्नतानां

कर्मभ्यो मुक्तिरिष्टा तदिह तनुभृतामाऽऽयुषः स्यात्समाप्तेः ।

मण्डन मिश्र ने प्रतिज्ञा की - चैतन्य रूप ब्रह्म के प्रतिपादन करने में वेदान्त उपनिषद प्रमाण नहीं है । क्योंकि कार्यान्वित चिद्रूप सिद्ध वस्तु में शक्ति का योग नहीं है । अर्थात सिद्ध वस्तु के प्रतिपादन में वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य नहीं है । जैसे घट पट आदि सिद्ध वस्तु के बोधन कराने में शास्त्र का तात्पर्य नहीं है । किन्तु वेदान्त से पूर्व भाग कर्म काण्ड पद समुदायात्मक वाक्यों के द्वारा समस्त कार्य वस्तु के बोधित कराने में प्रमाण है । घट मानय { घट ले आओ } इत्यादि प्रसिद्ध शब्दों की शक्ति आनय आदि कार्य मात्र में समधिगत है । कर्मों से ही मुक्ति अभिगत है । इसलिए इस लोक में मनुष्य को आयु

पर्यन्त कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए ।

आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम { जैमिनि सूत्र 1/2/1 } यह मीमांसा का मुख्य सिद्धान्त है कि वेद याग आदि क्रिया परक है । जो वेद भाग याग आदि क्रियाओं को नहीं करता । वह निष्फल है **। स्वर्गकामो यजेत्** स्वर्ग काम पुरुष याग करे । यह विधि है । जो वेद वाक्य कर्म का प्रतिपादन नहीं करते । वे भी अर्थवाद रूप से साक्षात वा परम्परया विधि से ही सम्बन्धित है ।

कुर्वन्नेवेह कर्मार्णि जिजिविषेच्छत समाः { ईश }

कर्म करते हुए 100 वर्ष जीने की इच्छा करे । इस प्रकार श्रुति आदि प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि वेद मन्त्रों का कर्म में तात्पर्य है । ब्रह्म में नहीं । मण्डन कहते हैं -

वादे कृतेऽस्मिध्यदि मे जयान्यस्त्वयोदितात्स्याद्विपरीतभावः ।

येयं त्वयाऽभूद्ददिता प्रसाक्ष्ये जानाति चेत्सा भविता बधूर्मे ।

अर्थात् इस वाद के करने पर यदि मेरा पराजय हुआ । तो आपसे कहे हुए से विपरीत भाव शुक्ल वस्त्र गृहस्थाश्रम को छोड़कर कषाय वस्त्रों को धारण करूँगा । जिन मेरी पत्नी उभय भारती को आपने शास्त्रार्थ में मध्यस्थ बनाया है । उसे मैं स्वीकार करता हूँ ।

इस प्रकार यतीन्द्र शङ्कर और विश्व रूप ने आपस में यह प्रतिज्ञा की कि पराजित व्यक्ति जीतने वाले व्यक्ति के आश्रम का ग्रहण करे । अनन्तर विजय में स्थापित दृष्टि वाले दोनों ने उदार बुद्धि वाली उभय भारती को मध्यस्थ पद पर अभिषिक्त कर विजय की कामना से शास्त्रवाद का आरम्भ किया ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

दोनों अपने आवश्यक कृत्य समाप्त कर शास्त्रार्थ करने के लिए अपने अपने निश्चित स्थान पर आ बैठे । तब उभय भारती ने उनके कण्ठ में पुष्पमाला पहना कर यह घोषणा कर दी -

माला यदा मलिनभावमुपैति कण्ठे यस्यापि तस्य विजयेतरनिश्चयः स्यात ।

उक्त्वा गृहं गतवती गृहकर्मसक्ता भिक्षाशनेऽपि चरितुं गृहिमस्करिभ्याम ।

अर्थात् जिसके भी कण्ठ की माला जब मलिन हो जायेगी । तब उसी का निश्चित पराजय समझा जायगा । गृह कार्य में संलग्न उभय भारती ने ऐसा कहकर घर चली गई । क्योंकि अपने पति के लिए भोजन और संन्यासी के लिए भिक्षा तैयार करनी थी ।

एक दूसरे पर विजयात्मक फल में आदर रखने वाले दोनों ने विवाद के निर्णय के लिए वाद का विस्तार किया । अर्थात दोनों विवाद में लगे रहे । इस शास्त्रार्थ की इतनी प्रसिद्ध हो गई कि ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवता लोग भी अपने अपने वाहन पर बैठकर सुनने के लिए उसी सदन के ऊपर स्थित हुए । ब्रह्मा आदि देवताओं की उपस्थिति के अनन्तर दोनों में महान शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ । बीच बीच में सभ्य लोग उन्हें साधुवाद देकर उत्साह बढ़ाने लगे । अपने पक्ष के लिए दोनों ने समस्त वेद की साक्षी प्रमाण माना । दोनों परस्पर प्रसन्न होते रहे । दिन प्रतिदिन शास्त्रार्थ उत्कृष्ट तथा गंभीर होने लगा । इसके सुनने के लिए दूर दूर की पण्डित मण्डली जुटने लगी । एक दूसरे को पराजित करने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहे थे । लेकिन इस शास्त्रार्थ में श्लाधनीय बात यह थी कि दोनों वादी प्रतिवादी बड़े प्रेम भाव से साधु शब्दों का प्रयोग कर रहे थे । कभी क्लान्त मन नहीं होते । न उनकी वाणी तथा स्वरादि में शिथिलता प्रतीत

होती । धारावाहिक प्रश्नोत्तर की झड़ी चल रही थी । मध्यस्थ उभय भारती प्रतिदिन मध्याह्न काल में आकर अपने पति को कहती कि भोजन का समय हो गया है । और यति शंकर को कहती - भिक्षा का समय हो गया है । इसी प्रकार 5-6 दिन बीत गये । शास्त्रार्थ में दोनों के मुख मण्डल विकसित थे । तथा होठों पर मधुर मन्द मन्द मुस्कान थी । न शरीर में पसीना होता । न कम्प होता । न वे आकाश की ओर देखते । अपितु सावधान मन एक दूसरे के प्रश्नों का उत्तर बड़ी प्रगल्भता से देते । न वे निरुत्तर होने पर क्रोध से बाक्छल का प्रयोग करते थे । अनन्तर यतिराज ने विलक्षण मण्डन मिश्र के शास्त्र कौशल को देखकर उनके सब पक्षों का खण्डन कर दिया और विद्वानों के समक्ष उन्हें प्रतिभाहीन बना डाला । अर्थात् शंकर ने मण्डन मिश्र को इस बात पर निरुत्तर कर दिया कि वेदान्त वाक्य भी कर्म प्रतिपादक वाक्यों के समान याग आदि क्रियाओं को कहते हैं । ब्रह्म को नहीं ।

आचार्य ने श्रुति प्रमाण से यह सिद्ध कर दिया - वेदान्त ब्रह्म में प्रमाण है, कर्म में नहीं । इस प्रकार सभ्यों में श्रेष्ठ मण्डन मिश्र जब अपने सिद्धान्त के समर्थन करने में असमर्थ हो गये । तब वेदान्त वाक्यों से प्रसिद्ध अद्वैत असिद्ध करने में असमर्थ हो गये । तब वेदान्त वाक्यों से प्रसिद्ध अद्वैत सिद्धान्त के खण्डन करने की इच्छा से **मण्डन मिश्र बोले -**

भो भो यतिक्ष्माधिपते भवद्भिर्जीवेशयोर्वास्तवमैकरूप्यम ।

विशुद्धमङ्गीक्रियते हि तत्र प्रमाणमेव न वयं प्रतीमः ।

विश्वरूप मण्डन मिश्र कहते है - हे यतिश्रेष्ठ ! आप लोग जीव और ब्रह्म की वास्तविक विशुद्ध एक रूपता स्वीकार करते हैं । परन्तु इस विषय में हम तो

कोई भी प्रबल प्रमाण नहीं जानते । अर्थात कोई प्रमाण नहीं है । नारायण ! विश्वरूप मण्डन पण्डित का अभिप्राय यह है कि जैसे प्रमाणान्तर से अवगत अर्थ के बोधक लौकिक वाक्य स्वतः प्रमाण नहीं है । वैसे ही घटादि के समान सिद्धार्थ ब्रह्म के अनुवादक मात्र होने से उपनिषद भी प्रमाण नहीं है । प्रत्यक्षादि प्रमाण के विषय भूत अर्थ का श्रुति से प्रतिपादन नहीं होता । जैसे भूतार्थ घटादि प्रत्यक्षादि प्रमाण के विषय होने के कारण उनका श्रुति से प्रतिपादन नहीं होता । वैसे सिद्ध वस्तु ब्रह्म का भी श्रुति प्रतिपादन नहीं करती । दुःख हेय है । और सुख उपादेय है । दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति प्रत्येक प्राणी चाहता है । वही पुरुषार्थ है । सुख के साधन भूत याग आदि उपादेय हैं । और दुःख के साधन भूत हिंसा सुरापान आदि हेय हैं । इसी में श्रुति का तात्पर्य है । परन्तु हेयोपादेय रहित ब्रह्म के प्रतिपादन में पुरुषार्थ का अभाव होने से उपनिषद का प्रमाण निष्फल है ।

आचार्य सर्वज्ञ शंकर देशिकेन्द्र कहते हैं - हे विश्वरूप मण्डन ! इस विषय में उपनिषद प्रमाण हैं । उद्दालक आदि महान गुरु लोग श्वेतकेतु आदि प्रमुख शिष्यों परमात्मा का आत्मरूप से ग्रहण कराते हैं ।

स य एषोऽणिमैतदात्म्यमिदँ सर्वं तत्स्यँ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो { छान्दोग्य उपनिषद 6/8/7 } वही सत्य है । वह आत्मा है ।

हे श्वेतकेतु ! तत्त्वमसि तू अर्थात तेरा आत्मा तत्त्व है । तेरा शरीर तत्त्व वस्तु नहीं । जैसे जल में डाला गया लवण अर्थात नमक घुल जाने से दृष्टिगोचर नहीं होता । वैसे ही ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त होने पर भी दृष्टिगोचर नहीं होता । न चक्षुषा गृह्यते रूप रहित होने से वह चक्षु से गृहीत नहीं होता । याज्ञवल्क्य कहते हैं - **अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि तदाऽऽत्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मि तस्मातत्सर्वमभवत ।**

हे जनक ! निश्चय है । तू अभय पद को प्राप्त हुआ है । मैं ब्रह्म हूँ । ऐसा अपने को जान । ऐसा जानने से वह सब ब्रह्म हुआ । **ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति** ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म ही होता है । **तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः** एकत्व देखने वाले को मोह कहाँ । और शोक कहाँ ? इत्यादि श्रुति प्रमाण, युक्ति और उदाहरणों से जीव ब्रह्म की एकता सिद्ध होती है । ब्रह्मात्मभाव सिद्ध वस्तु होने पर भी तत्त्वमसि अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि श्रुति अतिरिक्त प्रमाण से अनवगत होने के कारण घटादि के समान प्रत्यक्षादि प्रमाण का विषय नहीं है ।

यथा न चक्षुषा गृह्यते { मुण्डक 3/1/8 } वह आँख से नहीं देखा जा सकता । **यतो वाचो निवर्तन्तेऽप्राप्य मनसा सह { तैत्तिरीय 3/4/1 }** अतः प्रत्यक्षादि प्रमाणों के अविषय अनधिगत अर्थ को अवगत कराने वाले वेदान्त प्रत्यग भिन्न ब्रह्म में ही प्रमाण है ।

हेयोपादेय रहित होने से ब्रह्मात्म भाव अपुरुषार्थ भी नहीं है । क्योंकि हेयोपादेय रहित ब्रह्मात्म भाव अवगत होने से ही सब दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप पुरुषार्थ सिद्ध ही है । **उपादेय 2 प्रकार का है - यथा प्राप्त ग्राम आदि । दूसरा प्राप्त होने पर भी भ्रमवश अप्राप्त के समान जानना । जैसे कण्ठस्थ भूषण एवं हेय भी 2 प्रकार का है - प्रथम यथा अहीन व्यावहारिक सर्पादि । दूसरा हीन । जैसे पैर के नुपुर आदि भूषणों में सर्प का भ्रम ।** ब्रह्मात्म भाव में प्रथम प्रकार का हेयोपादेय तो यद्यपि नहीं है । तो भी अविद्या से समारोपित शोक आदि तत्त्वमसि आदि वेदान्त वाक्यों से उत्पन्न तत्त्व ज्ञान से आत्म साक्षात्कार होने पर निवृत्त हो जाते हैं । और प्राप्त भी आनन्द अप्राप्त इव प्राप्त होता है । त्यक्त शोकादि अत्यक्त के समान त्यक्त होते हैं । अर्थात नित्य निवृत्त शोक आदि की निवृत्ति । और नित्य प्राप्त परमानन्द की प्राप्ति पुरुषार्थ है । विश्वरूप मण्डन मिश्र कहते हैं -

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

वेदावसानेषु हि तत्त्वमादिवचांसि जसान्यघमर्षणानि ।

हुंफण्मुखानीव वचांसि योगिन्नैषां विवक्षाऽस्ति कुहस्विदर्थे ।

अर्थात जैसे वेद में हुँ, फट् आदि मुख्य वाक्य जप पाठ करने से पाप नाशक होते हैं । वैसे ही वेदान्तों में तत्त्वमसि आदि वाक्य जप करने से पाप निवर्तक होते हैं । अतः हे योगिन् ! इन तत्वमसि आदि वाक्यों की जप आदि से अतिरिक्त किसी अर्थ में विवक्षा नहीं है ।

भाष्यकार सर्वज्ञ शंकरदेशिक कहते हैं - किसी अर्थ के प्रतीत न होने पर विद्वानों ने हूँ, फट आदि को जपोपयोगी कहा है । परन्तु हे प्राज्ञ ! यहाँ तत्वमसि के विषय में तो स्पष्ट अर्थ प्रतीत होता है । तो वह जपार्थक कैसे होगा ?

मण्डन मिश्र कहते हैं - हे यतिवर ! किसी अंश में आपका यह कथन ग्राह्य है । परन्तु तत्वमसि वाक्य से जीव ईश्वर का अभेद आपतपः { विना विचार किये } प्रतीत होता है । वस्तुतः वह यज्ञादि कर्मों के कर्ता की प्रशंसा के द्वारा विधि का अंग ही है । अभेद बोध से तो केवल जीवात्मा की नित्यता प्रकट करता है । क्योँकि आत्मा को नित्य समझने पर पुरुष यज्ञादि कर्मों से प्रवृत्त होता है । अन्यथा नहीं । अतः वेद का ज्ञान काण्ड कर्म काण्ड के सिद्ध वस्तु ब्रह्म के लिए नहीं ।

आचार्य भगवत्पाद शंकर देशिकेन्द कहते हैं - हे प्राज्ञ ! कर्म काण्ड में **आदित्यो यूपः** आदित्य युप है { यूप कहते हैं - स्थूणा को यह प्रायः बाँस या खदिर वृक्ष की लकड़ी से बनाई जाती है । जिसके साथ बलि दिया जाने वाला पशु, मेघ के समय बाँध दिया जाता है । यूप विजय स्मारक को भी कहा जाता है } इत्यादि अनेक वाक्य उपलब्ध होते हैं । वे यूप आदि याग के अंग होते हैं ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

जैसे यह वाक्य यूप की आदित्य रूप से प्रशंसा करता हुआ विधि का अंग है । वैसे ही तत्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि इत्यादि ज्ञान काण्ड के अन्तर अभेद विषयक विधि के अंग कैसे हो सकते हैं ?

विश्वरूप मण्डन मिश्र कहते हैं - हे भगवन् ! उपनिषद् में मनो ब्रह्मेत्युपासीत { मन ब्रह्म है, ऐसी उपासना करें } अन्नं उपास्य इत्यादि वाक्य कर्म की समृद्धि के लिए मन, अन्न तथा आदित्यादि वस्तुओं को ब्रह्म मानकर उपासना का उपदेश देते हैं । अर्थात् इनकी ब्रह्म रूप से उपासना करनी चाहिए । इस प्रकार उपासना युक्त कर्म का फल अधिक होता है । जैसे ये उपासना के वाक्य हैं ? उसी प्रकार तत्वमसि आदि वाक्य भी जीव में ब्रह्म दृष्टि करने का उपदेश करते हैं । अभेद नही । अतः ये भी विधायक वाक्य हैं ।

आचार्य शंकर देशिक कहते हैं - हे मनीषी ! यह ठीक नहीं है । क्योंकि जिन वाक्यों का आपने उदाहरण दिया है । उनमें उपासीत { उपासना करे } इस प्रकार लिङ्ग लोट आदि के सूचक पद हैं । जिससे इन वाक्यों को विधि का अंग मानना युक्त है । परन्तु तत्वमसि वाक्य में लिङ्ग आदि सूचक कोई पद भी नहीं है । किन्तु असि क्रियावाचक पद वर्तमान काल का बोध कराता है । इसलिये उपासना को नहीं कहता । जिससे विधि का अंग हो ।

विश्वरूप मण्डन मिश्र कहते हैं - हे यतिवर ! रात्रि सत्र नामक सोम याग में विधि सूचक लिंग पद के अभाव में भी प्रतिष्ठा रूपी फल की प्राप्ति देखी जाती है । अर्थात प्रतितिष्ठन्ति हवाय एता रात्रि रूपयन्ति प्रतिष्ठा की कामना वाला व्यक्ति रात्रि सत्र याग करे । जैसे यहाँ विधि की कामना की जाती है । वैसे ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति यहाँ पर भी मुक्ति रूपी फल का वर्णन मिलता है । इसलिये यहाँ भी ब्रह्मबुभूषु ब्रह्मवेदनं कुर्यात विधि की कल्पना करना युक्त है । अर्थात वह जीव ब्रह्म का ध्यान कर उसकी उपासना करे ।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

आत्मा वा अरे द्रष्टव्य { बृहदारण्यक 2/4/5 } { याज्ञवल्क्य - हे मैत्रेयी ! आत्मा द्रष्टव्य है } **य आत्माऽपहतपाम्पा सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः** { यह आत्मा पाप रहित है । यह अन्वेष्टव्य और विशेष जिज्ञासितव्य है } आ**त्मेत्येवोपासीत आत्मानमेव लोकमुपासीत** { आत्म रूप लोक की उपासना करे } ब्रह्मविदबृह्मैव भगवती इत्यादि विधियों के होने पर वह आत्मा कैसी है ? ब्रह्म क्या है ? इस प्रकार आकांक्षा होने पर नित्यः सर्वज्ञः सर्वगतो नित्यतृप्तो नित्यशुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावो विज्ञानमानन्दं ब्रह्म इत्यादि सब वेदान्त वाक्य उसके स्वरूप को बतलाते हुए उपयुक्त होते हैं । और ब्रह्म की उपासना से शास्त्र से ज्ञात और लोक दृष्टि से अज्ञात मोक्ष रूप फल होगा ।

यदि कर्तव्य विधि में अनुप्रवेश किये विना वस्तु मात्र का कथन हो और हानोपदान रहित हो । तो इससे **सप्तद्वीपा वसुमति राजऽसौ गच्छित** { पृथ्वी 7 द्वीप वाली है । यह राजा जाता है } इत्यादि वाक्यों के समान वेदान्त वाक्य भी अनर्थक ही होँगे । किञ्च वेदान्त वाक्य प्रवृत्ति निवृत्ति के बोधक न होने के कारण शास्त्र भी नहीं हो सकते । क्योँकि प्रवृत्ति निवृत्ति परक ही शास्त्र कहा गया है । इसके सम्बन्ध में भी कहा गया है -

प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा ।

पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते ।

अर्थात् नित्य और कृतक इनके द्वारा पुरुषों को जो प्रवृत्ति का उपदेश करता है । वह शास्त्र कहा जाता है ।

अर्थात् वेद और स्मृति आदि ही शास्त्र होते हैं । दूसरी बात - यह रज्जु है । सर्प नहीं है । इत्यादि श्रवण से जैसे भ्रान्त श्रोता के भय कम्पनादि निवृत्त होते हैं । वैसे ब्रह्म स्वरूप के श्रवण से संसारित्व भ्रान्ति निवृत्त नहीं होती । क्योंकि श्रुत ब्रह्म स्वरूप पुरुष में यथा पूर्व सुख दुःखादि संसार धर्म देखे जाते हैं । और

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः { आत्मा का मनन और निद्धिध्यासन करने चाहिए } इस प्रकार श्रवण के अनन्तर मनन और निद्धिध्यासन का श्रुति में विधान है । अर्थात यदि श्रवण मात्र से चरितार्थ होता । तो मनन और निद्धिध्यासन का विधान क्यों होता ? इससे सिद्ध होता है कि केवल श्रवण से फल सिद्धि नहीं होती ।

आचार्य शंकर देशिकेन्द्र कहते हैं - हे विश्वरूप ! यदि मुक्ति उपासना का फल है । तब तो उपासना रूप क्रिया जन्य होने से स्वर्ग आदि फल के समान अनित्य हो जायेगी । क्योँकि यज्जन्यं तदनित्यं { जो भाव पदार्थ उत्पन्न होता है । वह अवश्य नष्ट होता है } यह नियम है । उपासना भी मानसिक क्रिया है । इसका करना । न करना । व अन्यथा करना । व्यक्ति के अधीन है । समस्त कर्माँ की यही दशा है । परन्तु ज्ञानं वस्तुतन्त्रं न पुरुष तन्त्रम ज्ञान व्यक्ति के अधीन नहीं है । प्रत्युत वस्तु के अधीन है । उसमें जानना । न जानना । अन्यथा जानना । मनुष्य के अधीन नहीं है । जैसी वस्तु होगी । वैसा ही ज्ञान होगा । अन्यथा नहीं । यथा अग्नि उष्ण है । उसको शीतल नहीं कहा जाता । इत्यादि उदाहण हैं । इसलिए ज्ञान कर्म के अन्तर्गत नहीं है ।

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः इत्यादि श्रूयमाण लिङ्ग आदि अनियोज्य विषयक होने से कुण्ठित हो जाते हैं । और ये विधियाँ नहीं हैं । किन्तु विधि के सदृश हैं । अतः स्वाभाविक विषयों की और प्रवृत्ति से विमुखीकरण के लिए हैं । अर्थात विषय की ओर प्रवृत्त पुरुष को विषयों से विमुख करना ही इन विधियों का प्रयोजन है । अन्यथा क्षी**यन्ते चात्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे { मुण्डक 2/2/8 }** उस परम तत्त्व के दर्शन करने वाले विद्वान के सब कर्म क्षीण हो जाते हैं । **आनन्दं ब्रह्मणो निद्वान्न विभेति कुतश्चन { तैत्तिरीय 3/1/1 } अभयं वै जनक प्राप्तोऽसि,** हे जनक ! तू अभय पद को प्राप्त हुआ है ।

त**दान्तमानमेवावेदहं ब्रह्मासि**, उस ज्ञानावस्था में अपने ऐसा जाने कि मैं ब्रह्म

हूँ । इत्यादि श्रुतियाँ ब्रह्म ज्ञान के अनन्तर मोक्ष को बतलाती है । यदि मोक्ष ज्ञान जन्य वा अपूर्व जन्य मानेँ । तो श्रुतियाँ बाधित होँगी । ब्रह्म साक्षात्कार होने पर तो सर्व कर्तव्यता की हानि और कृत कृत्यता हमारे मत में अलंकार रूप है । मननादि सहकृत श्रवण से ब्रह्म साक्षात्कार होने पर संसारित्व का निवृत्ति श्रुति स्मृति और अनुभव सिद्ध है । हित शासन से अर्थात मोक्ष रूप हित का प्रतिपादक होने से वेदान्त मुख्य शास्त्र है ।

मण्डन कहते हैं - हे सत्तम ! यह बात है कि तत्वमसि आदि वेदान्त वाक्य उपासना परक नहीं है । तो न सही । परन्तु हे विद्वन ! ये वाक्य एकता परक नहीं है । अपितु जीव ब्रह्म की सादृशता परक है । अर्थात् वह जीव ईश्वर के सदृश है ।

तदा विद्वान्पुण्यपापै विधूय निरञ्जनः परगं साम्यपुपैति { मुण्डक 3/1/3 }

ज्ञानावस्था में वह विद्वान पुण्य पाप रहित हो निरञ्जन परम साम्य को प्राप्त होता है । ऐसी श्रुति भी है । जब भिन्न वस्तुओं का अभेद बताया जाता है । तो उसका यह अभिप्राय होता है कि यह उसके सदृश है । जैसे सिंहो माणवकः यह माणवक नाम वाला व्यक्ति सिंह है । अर्थात सिंह के सदृश है । क्योंकि यह पुरुष सिंह के समान पराक्रमी तथा निर्भय है । आदित्यो यूपः अर्थात आदित्य के सदृश यूप यज्ञ स्तम्भ है ।

आचार्य शंकर कहते हैं - यदि यह वाक्य जीव की ब्रह्म के साथ समानता का प्रतिपादक है । एकता का नहीं । तो किस गुण को लेकर ? क्या चैतन्य गुण को लेकर जीव परमेश्वर के सदृश है ? अथवा सर्वज्ञता तथा सर्वशक्तिमत्ता आदि गुणों को लेकर ? यदि कहो कि चैतन्य गुण को लेकर समानता है । तब तो शास्त्र आदि का उपदेश व्यर्थ होगा । क्योंकि यह समानता तो लोक प्रसिद्ध

है । उसका कथन केवल अनुवाद मात्र है । उपदेश नही । यदि कहो कि सर्वज्ञता और सर्व शक्तिमत्ता आदि गुणों को लेकर जीव ब्रह्म के सदृश है । तो यह भी ठीक नहीं है । क्योँकि प्रथम तो आपके भत का बाध होगा । कारण कि मीमांसक जीवात्मा को सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान नहीं मानते । दूसरा यदि सर्वज्ञता आदि को लेकर जीव परमेश्वर के सदृश हो जाता है । तो दोनों में समानता होने से भेद ही न रहा । तथा परमेश्वर स्वरूप ही हुआ । यदि भेद मानें । तो अनन्त ईश्वरों की कल्पना करनी पड़ेगी । यह तो महान अनिष्ट है । अतः एकता मानना युक्त है ।

मण्डन कहते हैं - हे मुनिवर ! जीव भी परमात्मा के समान नित्य है । तथा आनन्द आदि गुणों का निधान है । ये गुण आत्मा में सदा रहते हैं । परन्तु अविद्या से आवृत्त होने के कारण इनकी प्रतीति नहीं होती । यदि इस प्रकार की समानता कहें । तो इसमें कोई दोष नहीं है ।

आचार्य भाष्यकार कहते हैं - हे विश्वरूप ! हे प्राज्ञ ! यदि यह आप मानते हैं कि जीव में परमात्मा के सदृश गुण हैं । परन्तु वे अविद्या से आवृत्त हैं । अविद्या के निवृत्त हुए । वे प्रतीत होने लगते हैं । तो फिर जीव वस्तुतः ब्रह्म है । इसके मानने से आपको आग्रह क्यों है ? आपने यह स्वयं स्वीकार किया है कि जीव अविद्या से आवृत्त होने के कारण अपने को ब्रह्म नहीं समझता । जब अविद्या की निवृत्ति हो जाती है । तब वह अपने को सचमुच ब्रह्म समझने लगता है ।

विश्वरूप मण्डन कहते हैं - अच्छा तो इसका यह अभिप्राय हुआ कि चेतन होने से जीव ब्रह्म के तुल्य है । इस कथन से यह सिद्ध होगा कि यह संसार चैतन्य से उत्पन्न हुआ है । ऐसा मानने से अचेतन परमाणु अथवा प्रकृति से जगत की उत्पत्ति मानने वाले वैशेषिक तथा सांख्यों का खण्डन स्वतः सिद्ध

हो जाता है ।

आचार्य भगवत्पाद कहते हैं - वाह ! वाह ! आपने खूब कही । ऐसी दशा में तो तत्वमसि के स्थान पर तत्वमस्ति वाक्य होना चाहिये । तत { जगत का कारण - ईश्वर } त्वम् { जीव } अस्ति { है } वह तू है । ऐसा प्रयोग होगा । तब तो तत्वमसि में असि का प्रयोग आपके मत से ठीक नहीं है । आप इस तत पद से इस जगत के मूल कारण जड़ न होने की सिद्ध करते हैं । वह तो तदैक्षत { उसने ईक्षण किया } इत्यादि उपनिषद वाक्यों से प्रथम ही सिद्ध है । और जड़त्व की शंका निवृत्त हो जाती है । तो पुनः प्रधान निरास विषयक शंका नहीं करना चाहिये ।

{ नोट - तदैक्षत यह विचारणीय प्रश्न है कि जगत का मूल तत्व जड़ है । अथवा चेतन ? नैयायिक और वैशेषिक जड़ परमाणुओं से जगत की उत्पत्ति मानते हैं । सांख्य मत में जड़ प्रधान सृष्टि का कृर्त्त कारण है । परन्तु वेदान्त चेतन ब्रह्म को जगत का मूल कारण मानता है । यथा -

{ तदैक्षत बहुस्या प्रजायते { छान्दोग्य 6/2/3 } उसने ईक्षण अर्थात संकल्प किया कि - मैं बहुत होऊँ }

प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से अभेद का विरोध -

मण्डन मिश्र कहते हैं - जीव ब्रह्म की एकता कथमपि सिद्ध नहीं हो सकती । क्योंकि यह एकता प्रत्यक्ष अनुमान तथा श्रुति इन 3 प्रमाणों से वाधित है । इनमें से प्रथम पक्ष प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रसिद्ध अनुभव है कि मैं ईश्वर नहीं हूँ । किन्तु मैं अल्पज्ञ जीव उसका दास हूँ । यह प्रत्यक्ष प्रमाण जीव ब्रह्म की एकता का विरोधी है । इसलिये **स्वाध्यायऽध्येतव्यः** इस विधि वाक्य से आश्रित तत्वमसि आदि वचन केवल जपोपयोगी है । ऐसा स्वीकार करना चाहिए ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

वेदान्त भाष्यकार आचार्य शंकर कहते है - यदि इन्द्रियों द्वारा जीव और ब्रह्म का भेद ज्ञात होता । तो अभेद प्रतिपादक तत्वमसि आदि वेद वाक्यों का विरोध निश्चित होता । परन्तु प्रत्यक्ष में जीव ब्रह्म का भेद ही अगृहीत है । भेद का स्वरूप है । जैसे सूर्य चन्द्रमा नहीं है । मनुष्य पशु नहीं है इत्यादि । भेद तो अभाव रूप है । उसके साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध अयुक्त है । क्योंकि इन्द्रियाँ अपने अपने गुण तथा गुण युक्त भाव वस्तु को ग्रहण करती है । इसलिए भेद रूप अभाव इन्द्रियों द्वारा गृहित न होने से ईश्वर तथा जीव का भेद प्रत्यक्ष प्रमाण से गृहीत है । यह कथन अयुक्त है । और भेद के प्रत्यक्ष में अनुपयोगी तथा प्रतियोगी दोनों का ज्ञान अपेक्षित है । अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम रूप आदि रहित होने से ईश्वर के साथ इन्द्रियों का सम्बन्ध ही नहीं है । इससे ईश्वर का प्रत्यक्ष भी नहीं होता । इससे अभेद प्रतिपादक श्रुतियों के साथ कोई भी विरोध नहीं है ।

मण्डन कहते हैं - हे यतिवर ! विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध को लेकर जीव ब्रह्म के भेद का प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकता है । यथा - **अहमीश्वराद्भिन्नः** { मैं ईश्वर से भिन्न हूँ } यह पूर्वोक्त जीव भेद का विशेषण है । और ईश्वर विशेष्य । यहाँ यद्यपि इन्द्रियों का संयोग सम्बन्ध नहीं है । फिर भी संयुक्त विशेषण विशेष्य भाव का सम्बन्ध है ही । इस प्रकार हे विद्वन ! भेद गृहीत होने से अभेद का बाध हो सकता है । इन्द्रिय और विषय के सम्बन्ध को सन्निकर्ष कहते हैं । विना सन्निकर्ष के विषय का ज्ञान नहीं होता । न्याम मत में सन्निकर्ष 6 प्रकार के माने गये है - 1 संयोग 2 संयुक्त समवाय 3 संयुक्त समवेत समवाय 4 समवाय 5 समवेत समवाय 6 विशेषणविशेष्य भाव

आचार्य शंकर कहते हैं - केवल विशेषणता सन्निकर्ष से किसी भी अभाव का ज्ञान नहीं हो सकता । क्योंकि अति प्रसंग हो जायेगा । विशेषण विशेष्य भाव सन्निकर्ष तब लागू हो जन भेदाश्रय आत्मा का इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष हो । आत्मा तो इन्द्रियों से अप्रत्यक्ष है । न चक्षुषा गृह्यते { जो चक्षु आदि इन्द्रियों

द्वारा गृहित नहीं है } इसलिए भेद अनुगृहीत है ।

मण्डन मिश्र कहते है - हे यतिन्द्र ! यह युक्ति ठीक नहीं है । क्योँकि भेद का आश्रय भूत आत्मा का तो इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होता है । न्याय मत में आत्मा और मन द्रव्य पदार्थ है । अतः द्रव्यों का संयोग सम्बन्ध निश्चित ही है ।

आचार्य भाष्यकार भगवत्पाद शंकर कहते हैं - हे योगी ! आत्मा को आप क्या मानते हैं - विभु अथवा अणु ! किसी भी रूप से आत्मा के साथ मन का संयोग नहीं हो सकता । क्योँकि सावयव द्रव्योँ का ही संयोग देखा जाता है । आत्मा तो अवयवी नहीँ है । क्योँकि विभु या अणु दोनों अवयवों से रहित होते हैं । न्याय मत में मन भी अणु होने से अवयव रहित है । अतः इनका संयोग कैसे हो सकता है ? मन इन्द्रिय है । इस सिद्धान्त को स्वीकार कर आपने मन का भेद के साथ संयोग कहा है । परन्तु वेदान्त सिद्धान्त में मन इन्द्रिय नहीं है । किन्तु ज्ञान कराने में इन्द्रियों का सहायक मात्र है । जैसे दीपक नेत्रेन्द्रिय द्वारा रूप ज्ञान में सहायक मात्र है ।

इन्दियेभ्यः परा ह्यार्थाः इन्द्रियेभ्यश्च परं मनः { कठ श्रुति 3/10 }

{ इन्द्रियों की अपेक्षा सूक्ष्म होने से उनके विषय श्रेष्ठ हैं । विषयों से मन उत्कृष्ट है } **मनः षष्ठानीन्द्रियाणि** { भगवद्गीता 15/7 } { मन के साथ 6 इन्द्रियाँ हैं } इत्यादि श्रुतिः स्मृति प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि मन इन्द्रिय नहीं है । किन्तु उनके साथ वर्णन मात्र है । यथा यजमान पञ्चमा इडा भक्षयन्ति यजमान ऋत्विक न होने पर भी इडा भक्षण में पाँचवां कहा गया है ।

विश्वरूप मण्डन मिश्र कहते हैं - हे योगीवर्य ! यदि भेद ज्ञान इन्द्रिय जन्य नहीं । तो न सही । वह स्वयं साक्षी स्वरूप है

{ वेदान्त में अभाव अधिकरण रूप है } फिर भी साक्षी स्वरूप होने से विरोध होने के कारण जीवात्मा और परमात्मा अभेद ज्ञान कराने में तत्त्वमसि आदि

वाक्य प्रमाण कैसे हो सकते हैं ?

अचार्य सर्वज्ञ शंकर देशिक कहते हैं - प्रत्यक्ष तथा श्रुति में कोई भेद नहीं है । क्योँकि दोनों का विषय { आश्रय } भिन्न भिन्न है । यथा प्रत्यक्ष प्रमाण अविद्या आदि उपाधि युक्त जीव तथा मायोपाधि विशिष्ट ईश्वर में भेद दिखलाता है । और श्रुति अविद्या एवं माया रूप उपाधि रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप जीव ब्रह्म का अभेद वर्णन करती है । इस प्रकार प्रत्यक्ष का विषय औपाधिक जीव और ईश्वर है । और अभेद बोधक श्रुति का विषय उपाधि रहित शुद्ध चैतन्य स्वरूप प्रत्यग भिन्न है । 1 आश्रय होने से विरोध होता है । परन्तु भिन्नाश्रय होने से दोनों में विरोध मानें । तो भी कोई विरोध नहीं । क्योँकि पूर्व प्रवृत्त प्रमाण दुर्बल है । और उत्तर प्रवृत्त श्रुति प्रमाण प्रवल है । अतः प्रवल से दुर्बल बाधित होता है । यथा प्रत्यक्ष से तो सूर्य आदि अल्प परिमाण वाले प्रतीत होते हैं । किन्तु उत्तर शास्त्र प्रमाण से उसका बाध होता है । अथवा जैसे सीपी में पूर्व रजत ज्ञान उत्तर शूक्ति ज्ञान से बाधित है । वैसे ही भेद साधक प्रत्यक्ष प्रमाण अभेद साधक श्रुति से बाधित है । अपच्छेदन्याय { यह मीमांसा शास्त्र से सम्बन्धित है } से भी श्रुति प्रत्यक्षक का बाधक ही है । अतएव अभेद सिद्धान्त सत्य है । सत्य है ।

द्वितीय पक्ष अभेद का अनुमान से विरोध

नन्वेवमप्यस्त्यनुमानबाधोऽभेदश्रुतेः संयमिचक्रवर्तिन ।

घटादिवद ब्रह्मनिरूपितेन भेदेन युक्तोऽयमसर्ववित्तवात ।

मण्डन मिश्र कहते हैं - हे यतिराज ! श्रुति के साथ प्रत्यक्ष प्रमाण के।विरोध का तो आपने खण्डन कर दिया । परन्तु अनुमान से अभेद बोधक श्रुति बाधित है । यथा जीवो ब्रह्मनिरूपित भेदवान असर्वज्ञत्वात घटवत । सर्वज्ञ न

होने के कारण जीव उसी प्रकार ब्रह्म से भिन्न है । जिस प्रकार साधारण घट । यह अनुमान अभेद श्रुति का बाधक है । अर्थात इन अनन्त जीवों का नियन्ता । तथा इस अलौकिक सृष्टि का कर्ता अल्पज्ञ जीवों से भिन्न अवश्य कोई सर्वज्ञ ईश्वर होना चाहिए । अन्यथा यह व्यवस्था न हो सकेगी । अतः यह अनुमान जीव तथा ईश्वर भेद सिद्ध करता है ।

आचार्य शंकर कहते हैं - हे विद्वन ! इस अनुमान से जीव और ईश्वर में जिस भेद को सिद्ध किया जाता है । क्या वह पारमार्थिक { सत्य } है । या काल्पनिक { कल्पित } ? यदि पारमार्थिक है । तो आपका दृष्टान्त ठीक नहीं है । क्योंकि आपके मत में पृथ्वी आदि पदार्थ ईश्वर से भिन्न नहीं हैं । तो दृष्टान्त कैसे हो सकता है । जबकि दृष्टान्त, पक्ष और साध्य से भिन्न होता है । यदि काल्पनिक है । तो हम वेदान्ती लोग जगत की काल्पनिक सत्ता मानते ही हैं । तो उसके सिद्ध करने में प्रमाणों की क्या आवश्यकता है ? इस काल्पनिक भेद को लेकर स्व स्वामिभाव नियम्य नियामकभाव आदि जगत की सब व्यवस्था सुचारु रूप से चल सकती है ।

मण्डन कहते हैं - हे देशिकेन्द्र ! जीव और ईश्वर का भेद तो आप अविद्या रूपी उपाधि से मानते हैं । वस्तुतः दोनों 1 ही हैं । परन्तु ईश्वर और पृथ्वी का भेद तो उपाधि के विना है । अतः दृष्टान्त बन सकता है ।

आचार्यपाद कहते हैं - हम जीव तथा ईश्वर भेद के समान पृथ्वी तथा ईश्वर में भेद भी अविद्या रूप उपाधि से ही मानते हैं । क्योंकि जब तक अविद्या है । तब तक ही भेद है । अविद्या के निवृत्त हुए कोई भेद नहीं रहता । इसलिये आपका घटरूप दृष्टान्त सर्वथा असंगत है ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

तृतीय पक्ष अभेद श्रुति का भेद श्रुति से विरोध

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समाने वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।

विश्वरूप मण्डन कहते हैं - हे यतिन्द्र ! 2 सखा { समान नाम वाले } सुन्दर गति वाले पक्षी शरीर रूपी 1 ही वृक्ष को आश्रित किये रहते हैं । सदा इकट्ठा रहने वाले उनमें 1 तो उसके स्वादिष्ट फलों { कर्म फलों को } भोगता है । और दूसरा उन फलोँ को न भोगता हुआ देखता रहता है । इस मन्त्र में जीव को कर्मफल भोक्ता और परमेश्वर को प्रत्येक कर्म का द्रष्टा अर्थात कर्मफल के साथ तनिक भी सम्बन्ध न रखने वाला बताया गया है । यह भेद बोधक श्रुति अभेद प्रतिपादक तत्वमसि आदि श्रुतियों की बाधिका है । अर्थात इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि जीव और परमेश्वर 1 नहीं । किन्तु अलग अलग हैं ।

आचार्यपाद कहते हैं - हे विश्वरूप मण्डन ! यह मन्त्र जीवात्मा और परमात्मा में प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध भेद का केवल अनुवाद मात्र है । किन्तु अन्य श्रुति से इस भेद ज्ञान की निन्दा कही गई है - **यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति { तैत्त 3/7 } मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति { कठ 2/10 }** { जब यह इस प्रत्यग भिन्न ब्रह्म में थोड़ा सा भेद करता है । उसे जन्म मरण रूप भय प्राप्त होती है । वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है । जो इस ब्रह्म में भेद सा देखता है } इसलिये द्वा सुपर्णा इस श्रुति वाक्य का मुख्य तात्पर्य भेद कथन में नहीं है । हे विद्वन ! यदि ऐसा न हो । तो स्वार्थ में तात्पर्य न रखने वाले सब अर्थवाद वाक्य प्रमाण माने जायेंगे ।

आदि शंकर वैदिक विद्या संस्थान

दूरभाष: 9044016661

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

विश्वरूप मण्डन कहते हैं - क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत

{ श्रीमद भगवद गीता 13/2 } { हे भारत ! शरीर आदि सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ भी

मुझे जान } इत्यादि स्मृति प्रसिद्ध अर्थ के अवबोधक वाक्य तत्वमसि आदि श्रुति मूलक होने से जैसे प्रमाण मानना इष्ट है । वैसे ही प्रत्यक्ष सिद्ध अर्थ के बोधक द्वा सुपर्णा वाक्य प्रत्यक्ष मूलक होने से प्रमाण मानना होगा ।

आचार्य शंकर देशिकेन्द्र कहते हैं - यदि वेदज्ञों के द्वारा श्रुति मूलक स्मृति अर्थ में श्रुति प्रमाण नहीं होती । तो वेदार्थ { जीव ब्रह्म को न जानने वाले पामर लोगों द्वारा नाहमीश्वरः { मैं ईश्वर नहीं हूँ } इस जीव ईश्वर का भेद ज्ञात होने पर भी प्रत्यक्ष मूलक द्वा सुपर्णा यह श्रुति जीव और ईश्वर के भेद में प्रमाण भूत कैसे हो सकती है ? यह मन्त्र जीव और ईश्वर को कहता है । यह स्वीकार कर मैंने पहले ऐसा कहा है । वस्तुतः द्वा सुपर्णा इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है । किन्तु अन्तःकरण { बुद्धि } है । और जीवात्मा है । अर्थात कर्मफल भोक्ता अन्तःकरण { बुद्धि } है । और पुरुष उससे नितान्त भिन्न है । सम्पूर्ण संसार से रहित है । ऐसा श्रुति भगवती कहती है । वह केवल साक्षी है । इस प्रकार द्वा सुपर्णा यह मन्त्र बुद्धि और जीवात्मा के भेद का प्रतिपादक है । जीव तथा ईश्वर के भेद का प्रतिपादक नहीं है ।

विश्वरूप कहते हैं - हे पूज्य ! यदि श्रुति जीव और ईश्वर को छोड़कर जीव और बुद्धि का प्रतिपादन करती है । तो इससे जड़ बुद्धि में भोक्तृत्व प्रतिपादक यह मन्त्र प्रमाण रूप कैसे हो सकता ?

आचार्यपाद कहते हैं - हे विद्वन ! आपका यह आक्षेप युक्ति युक्त नहीं है ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

क्योंकि पैङ्ग्यरहस्य ब्राह्मण में यह अर्थ लिखा है -

तयोरर्न्यपिप्पलं स्वद्वत्ति इति सत्त्वमनश्नन्नन्योअभिचा ।

कशीत्यनश्नन्नन्योऽभिपश्यति ज्ञस्तावेतौ सत्त्वक्षेत्रत्राविति ।

सत्व { बुद्धि } कर्म फल का भोक्ता है । और द्रष्टा क्षेत्रज्ञ { आत्मा } है । यह श्रुत्यर्थ वेदान्त पक्ष को ही पुष्ट करता है । अतः हमारा अर्थ श्रुति प्रतिपादित और समीचीन है ।

विश्वरूप कहते हैं - इस उक्त ब्राह्मण ग्रन्थ वाक्य में भी सत्व शब्द का अर्थ जीवात्मा है । और क्षेत्रज्ञ शब्द का अर्थ परमात्मा । इस ब्राह्मण मन्त्र में भी जीवात्मा और परमात्मा का ग्रहण है । बुद्धि और जीवात्मा का नहीं ।

आचार्य शंकर भगवत्पाद कहते हैं - हे विद्वन ! इस ब्राह्मण में तो स्पष्ट लिखा है कि - **तदेतत्सत्त्वं येन स्वप्नं पश्यत्यथ योऽयं शारीर उपद्रष्टा स क्षेत्रज्ञः तावेतौसत्त्वक्षेत्रज्ञौ,** अर्थात् सत्व वह है । जिसके द्वारा स्वप्न देखा जाता है । और क्षेत्रज्ञ वह है । जो शरीर में रहता हुआ साक्षी है । दोनों सत्व और क्षेत्रज्ञ हैं । इस प्रकार इस मन्त्र में सत्व शब्द बुद्धि और क्षेत्रज्ञ द्रष्टा जीवात्मा को स्पष्ट कहा गया है । किन्तु जीव और ईश्वर नहीं । अतः आपका कथन अयुक्त है ।

मण्डन मिश्र कहते हैं - हे योगी ! उक्त वाक्य तदेतत्सत्त्वं येन स्वप्नं पश्यति में सत्व शब्द का अर्थ स्वप्न और दर्शन क्रिया का करने वाला कहा गया है । वह जीव है । उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ शब्द से स्वप्न द्रष्टा सर्ववित ईश्वर कहा गया है । अतः मेरा अर्थ उपयुक्त है ।

आचार्य भगवत्पाद कहते हैं - हे मनीषी ! येन स्वप्नं पश्यति इस वाक्य की क्रिया है पश्यति । इसमें तिङन्तप्रत्यय कतृर्वाचक है । और येन पद में तृतिया करण अर्थ को सूचित करती है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सत्व दर्शन का

कर्ता नहीं । बल्कि करण द्वार है । अर्थात इसका अर्थ बुद्धि है । जीव नहीं । उक्त वाक्य में द्रष्टा का विशेषण है शारीरः । शारीरः - शरीर में रहने वाला । इसलिए क्षेत्रज्ञ कदापि ईश्वर नहीं हो सकता । किन्तु शरीर में रहने वाला जीव हो सकता है ।

विश्वरूप मण्डन कहते हैं - हे योगिन् ! शारीरः पद का अर्थ सर्व व्यापक महेश्वर क्यों नहीं हो सकता ? शारीरः पद का तो यही अर्थ है कि शरीर में रहने वाला तो ईश्वर शरीर में रहता ही है । अतः शारीरः पद ईश्वर का बोधक है ।

आचार्य शंकर देशिक कहते है - सर्व व्यापक होने से जब ईश्वर शरीर से बाहर भी है । तो वह केवल शारीर कैसे हो सकता है । जिस प्रकार आकाश सर्व व्यापक होने से शरीर में भी रहता है । तो इससे आकाश को शारीर पद से कोई नहीं कहता ?

विश्वरूप मण्डन कहते है - मान लीजिये कि द्वा सुपर्णा यह मन्त्र जीव और ईश्वर को न कहकर बुद्धि और जीवात्मा का प्रतिपादक है । परन्तु अचेतन बुद्धि कर्म फल को भोगती है । यह कथन अयुक्त है । क्योंकि भोक्ता तो चेतन होता है । जड़ नहीं । यदि यह द्वा सुपर्णा मन्त्र जड़ भोक्ता को कहे । तो वह प्रमाण कैसे हो सकता है ?

आचार्यपाद कहते हैं - यद्यपि लोहा स्वयं दाहक नहीं । फिर भी अग्नि के सम्बन्ध से उसमें दाहक शक्ति आ जाती है । अर्थात उसमें दाहकत्व प्रयोग होता है । उसी प्रकार उसमें चेतन के प्रवेश करने से अर्थात चेतन के आध्यासिक तादात्म्य सम्बन्ध से अथवा चेतन प्रतिबिम्बित होने से बुद्धि में भी चेतन के समान भोक्तृत्व शक्ति उत्पन्न हो जाती है ।

नोट - **द्वा सुपर्णा** इस मन्त्र पर मण्डन मिश्र का शास्त्रार्थ समाप्त हो गया । अब वह कठ श्रुति के आधार पर पुनः शास्त्रार्थ आरम्भ करते हैं -

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

ऋतं पिवन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।

छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः । कठश्रुति 1/3/1

ब्रह्मवेत्ता लोग कहते है - शरीर में बुद्धि रूप गुहा के भीतर प्रकृष्ट ब्रह्म स्थान में प्रविष्ट हुए ऋतं कर्म फल को भोगने वाले छाया और घाम के समान परस्पर विलक्षण 2 तत्त्व हैं । जिन्होंने 3 वार नाचिकेता अग्नि का चयन किया है । वे पञ्चाग्नि के उपासक लोग भी यही वात कहते हैं ।

मण्डन कहते हैं - यह कठ श्रुति कहती है कि जिस प्रकार धूप और छाया परस्पर भिन्न हैं । उसी प्रकार जीव और ईश्वर भी सर्वथा भिन्न भिन्न है । इस प्रकार **ऋतं पिबन्तौ** यह कठ श्रुति की बाधिका है ।

आचार्य शंकर देशिक कहते हैं - व्यवहार सिद्ध भेद का प्रतिपादन करती हुई यह श्रुति अभेद प्रतिपादक पर श्रुति का बाध नहीं करती । सच तो यह है कि तत्वमसि यह अभेद श्रुति अपूर्व अर्थ { जीव ब्रह्म की एकता जो लोक में प्रसिद्ध है } का बोध कराती है । इसलिये वह अधिक बलवती है । इस एकत्व प्रतिपादक बलवती श्रुति से भेद श्रुति बाधित है । ऋतं पिबन्तौ इस श्रुति का भेद वर्णन करने में तात्पर्य नहीं है । क्योंकि भेद तो विना श्रुति की सहायता के भी लोक में प्रसिद्ध है । श्रुति का तात्पर्य तो अपूर्व अर्थ के प्रतिपादन में है । इसलिये आपके द्वारा उद्धृत ऋतं पिबन्तौ यह श्रुति भेद बोधक नहीं है । किन्तु लोक सिद्ध भेद का केवल अनुवाद मात्र है ।

मण्डन कहते हैं - हे यतिवर्य ! हमारी बुद्धि में अभेद श्रुति से भेद बोधक श्रुति अधिक बलवती है । क्योंकि { मैं ईश्वर नहीं हूँ } इस प्रकार प्रत्यक्ष आदि प्रमाण भी उसकी पुष्टि करते हैं । इसलिए भेद श्रुति प्रत्यक्षादि प्रमाण से बाधित अर्थ को कहने वाली अभेद श्रुति की बाधिका है ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

शंकर स्वामी कहते हैं - हे पण्डितवर्य ! श्रुतियों में बलवत्ता किसी अन्य प्रमाण से संपादित नहीं है । अन्यथा उन प्रमाणों से गतार्थ हो जाने के कारण श्रुतियों में दुर्बलता ही संपादित होगी । अर्थात अपनी प्रमाणता या बलवत्ता में अन्य प्रमाण की सहायता लेने का अर्थ तो यह है कि श्रुति को दुर्बल बनाना । या परतः प्रमाण मानना । जबकि वेद स्वतः प्रमाण माने गये हैं । वेदों का तात्पर्य लोक प्रसिद्ध अर्थ { भेद } के प्रतिपादन करने में नहीं है । क्योंकि वह तो लोक प्रसिद्ध है । प्रत्युत अज्ञात अर्थ { जीव ब्रह्म की एकता } के प्रतिपादन करने में तात्पर्य है । जो लोक प्रसिद्ध नहीं है । इस प्रकार भेद श्रुति से अभेद श्रुति प्रबल है । अतः जीव ब्रह्म की एकता मानना ही ठीक है ।

तैत्तिरीय श्रुति के आधार पर शास्त्रार्थ ।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन ।

सोऽश्नुते सर्वान्कामान सह ब्रह्मणा विपश्चितेति । तैत्तिरीय 2/1

मण्डन मिश्र कहते हैं - जो सत चिद आनन्द स्वरूप ब्रह्म को परम आकाश अर्थात हृदय के अन्दर गुफा में स्थित जानता है । वह सर्वत्र ब्रह्मा के साथ सब कामनाओं को भोगता है । इस श्रुति से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि मुक्ति में जीव और ब्रह्म अलग अलग रहते हैं । अतः भेद सत्य है ।

आचार्यपाद कहते हैं - इसका यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्मा के साथ समस्त कामनाओं को भोगता है । किन्तु इसका अभिप्राय है यह है कि अविद्या कृत आवरण दूर होने से ब्रह्म स्वरूप होकर वह एक साथ उन सभी कामनाओं को भोगता है । जो प्रथम ही उसके अन्दर विद्यमान थीं । परन्तु अविद्या के कारण अविद्यामान सी थीं ।

विश्वरूपाचार्य मण्डन कहते है - आ मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो

निदिध्यासितव्यः । बृहदारण्यक श्रुति 2/4/1

याज्ञवल्क्य - हे मैत्रेयी ! आत्मा द्रष्टव्य है । अतः उसका श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करना चाहिये । इस श्रुति में जीव को साक्षात करने वाला । तथा परमात्मा का साक्षात करने के योग्य बतलाया गया है । इसलिये दोनों का भेद सत्य है ।

शंकर स्वामी कहते हैं - यहाँ भी व्यव हार सिद्ध भेद को लेकर कर्म और कर्ता का प्रतिपादक है । अन्यथा अभेद बोधक श्रुतियों के साथ विरोध होगा । क्योंकि श्रुतियों का सही तात्पर्य अभेद अर्थात एकत्व में है । इसलिए यहाँ भी लोक सिद्ध भेद का अनुवाद मात्र है ।

अर्थापत्ति प्रमाण को लेकर शास्त्रार्थ ।

विश्वरूपाचार्य मण्डन कहते हैं - हे योगिन ! यदि जीव की ब्रह्म के साथ एकता हो । तो सबको प्रतीत होनी चाहिए - जीव ब्रह्म है । परन्तु एकत्व ज्ञान नहीं होता है । इसलिये दोनों में अभेद नहीं । किन्तु भेद ही है ।

शंकर स्वामी कहते हैं - अन्धेरे में घट घड़ा ज्ञात नहीं होता । तो इससे यह नहीं समझा जाता कि अन्धेरे में घड़ा नहीं है ? क्योँकि प्रकाश से अन्धकार के निवृत्त होने पर वह स्पष्ट प्रतीत होता है । इसी प्रकार अविद्या के कारण यद्यपि अभेद ज्ञान नहीं होता । फिर भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अभेद नहीं है । क्योँकि विद्या से अविद्या के निवृत्त हो जाने पर अभेद स्पष्ट ज्ञात होता है ।

{ इस प्रकार बहुत दिनों तक यह शास्त्रार्थ होता रहा । दोनों वादियों ने अपने अपने पक्ष की सिद्धि में बहुत से तर्क दिये । प्रमाण उपस्थित किये । परन्तु अन्त में यतिवर भगवत्पाद ने मण्डन मिश्र को सब प्रकार से निरुत्तर कर शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया । आचार्य की इन अकाटय व दृढ़ युक्तियों का सरस्वती ने अनुमोदन किया । उसने मण्डन मिश्र के हर्ष को खेद मे परिवर्तित

कर दिया । पति के भावी संन्यास ग्रहण करने के कारण खिन्न होकर सरस्वती ने अपने साक्षी होने का प्रमाण भी दे दिया । जिससे प्रसन्न होकर देवताओं ने आकाश से सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि की । }

इत्थं यतिक्षितिपतेरनुमोद्य युक्तिं मालां च मण्डनगले मलिनामवेक्ष्य ।

भिक्षार्थमुच्चलतमद्य युवामितिमावाचष्ट तं पुनरुवाच यतिन्दमम्बा ।

यतिराज की युक्तियों का अनुमोदन कर और मण्डन के गले की माला को मलीन देख उभय भारती ने कहा - आप दोनों भिक्षा के लिए चलिये । और शंकर से वह विशेष रूप से फिर बोली - प्राचीन काल में अति क्रोध वश दुर्वासा ने मुझे शाप दिया था । उस शाप की अवधि आपका यह विजय है । अब मेरा यह शाप समाप्त हो गया । इसलिये हे यतिन्द्र ! मैं अपने धाम को जा रही हूँ । इतना कहकर जब उभय भारती शीघ्रता पूर्वक जाने लगी । तब आचार्य शंकर ने नवदुर्गा मन्त्र द्वारा उन्हें बाँध रखा । क्योंकि वे उनको भी परास्त करना चाहते थे । शंकर स्वामी का सरस्वती के ऊपर विजय पाना अपनी सर्वज्ञता दिखला कर प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये नहीं था । किन्तु अपने अद्वैत सिद्धान्त की सिद्धि के लिये था ।

आचार्य शंकर सरस्वती से बोले - मैं आपको भली भाँति जानता हूँ । आप शिव की सहोदर बहन है । तथा ब्रह्मा की धर्म पत्नी हैं । इस संसार के कल्याणार्थ आपने अवतार धारण किया है । इसलिये जब तक आपके जाने में हमारी इच्छा न हो । तब तक आप यहाँ विराजमान हों । आचार्य के सारगर्भित वचनों को सुनकर सरस्वती ने शंकर स्वामी के अनुकूल होने की अनुमति दे दी । तब मुनि आनन्द से गदगद हो गये । और मण्डन मिश्र के हृदयगत भावों को जानने के लिए उत्सुक हुए ।

यतिश्रेष्ठ आचार्य शंकर भगवत्पाद के वेदार्थ निर्णय करने वाले, न्याय से युक्त वचनों से मण्डन मिश्र ने जब अपने को शास्त्रार्थ में परास्त होने का अनुभव

किया । तब उनका द्वैताग्रह यद्यपि शान्त हो गया । तो भी उन्होंने सन्देह कर सभा में यह कहा - हे यतिन्द्र ! मुझे इस समय अपने अभिनव पराजय से तनिक भी दुःख नहीं है । किन्तु इस बात का खेद अवश्य है कि त्रिकालज्ञ जैमिनि मुनि के वचनों का आपने खण्डन किया है । वे तपोनिधि वेदों के प्रचार और जगत के हित में रत थे । भला इन्होंने गलत सूत्रों की रचना क्यों की ?

सर्वज्ञ शंकर देशिक कहते हैं - जैमिनि के सिद्धांत में कहीं पर भी अन्यास संशय तथा विपर्य नहीं है । यह केवल हमारी अनभिज्ञता है कि जिससे उनके अभिप्राय को नहीं समझ सकते । जैमिनि का अभिप्राय परमानन्द स्वरूप परब्रह्म के प्रतिपादन में ही है । परन्तु विषय प्रवाह में बहने वाले जन साधारण को उसकी ओर ले जाने के लिए पुण्य कर्मों को करने की व्यवस्था की । क्योंकि निष्काम पुण्य कर्मों से अतःकरण की शुद्धि होती है । जो ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति में सहायक है । इससे शुद्ध अतःकरण वाले व्यक्ति को ब्रह्म जिज्ञासा हो सकती है । इस अभिप्राय को श्रुति भी स्पष्ट करती है -

तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति । यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।

ब्रह्म जिज्ञासु वेदों के अध्ययन, यज्ञ, दान तथा अनाशक तप से उन ब्रह्म को जानने की इच्छा करें ।

विश्वरूपाचार्य मण्डन मिश्र कहते हैं - हे यतिवर्य ! तब इस जैमिनि सूत्र का क्या तात्पर्य है ? आम्नायस्य क्रियार्थत्वादादार्थक्यमतदर्थानाम । जैमिनि सूत्र 1/2/1 (कर्म का प्रतिपादन करने वाली श्रुतियाँ ही सार्थक है । जो वेद भाग यज्ञ आदि क्रिया के लिए नहीं है । वह निरर्थक है } इस सूत्र से स्पष्ट सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण वेद साक्षात व परम्परा से कर्म का वर्णन करता है । न कि ब्रह्म का ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

सर्वज्ञ शंकर देशिकेन्द्र कहते हैं - श्रुति का तात्पर्य तो अद्वैत ब्रह्म के प्रतिपादन में ही है । परन्तु परम्परा से आत्मज्ञान उत्पन्न करने वाले कर्मों में भी श्रुति का ध्यान है । इस प्रकार यह सूत्र कर्म के प्रकरण में है । अतः उसका अर्थ कर्म परक मानना चाहिए । परन्तु ब्रह्म विद्या का प्रकरण तथा विषय इससे भिन्न है । इसलिए इस सूत्र के अभिप्राय वेदान्त वाक्य निरर्थक नहीं हो सकते ।

मण्डन कहते हैं -

ननु सच्चिदात्मपरताऽभिमता यदि कृत्स्नवेदनिचयस्य मुनेः ।

फलदातृतामपुरुषस्य वदन्त कथं निराह परमेश्वरमपि ।

- जब समस्त वेद का सच्चिदानन्द ब्रह्म के प्रतिपादन में तात्पर्य है । तब परमेश्वर से भिन्न कर्म ही फलदाता है । इस सिद्धान्त का प्रतिपादन मुनि ने ईश्वर का निराकरण कर कैसे किया ?

आचार्य शंकर भगवत्पाद कहते हैं - हे विश्वरूप ! प्रत्येक कर्म किसी कर्ता द्वारा होता है । जगत्कार्यं ईश्वरकृतृ कं कार्यत्वात, यथा मकान किसी कारीगर से बनाया जाता है । तथा जगद रूप कार्य भी किसी विशेष कर्ता द्वारा होना चाहिये । वह कर्ता सर्वज्ञ ईश्वर है । यह अनुमान आगम वचनोँ के विना ईश्वर को सिद्ध करता है । श्रुतियाँ केवल अनुमान का अनुवाद मात्र करती है । यह वैशेषिकों का मत है । परन्तु यह शुष्क अनुमान ईश्वर सिद्धि में पर्याप्त नहीं है । { वेद को न जानने वाला उस बृहद औपनिषद ब्रह्म को नहीं जान सकता } यह श्रुति वचन ईश्वर को वेद के न जानने वालों के लिए अगोचर सूचित करता है । ऐसी दशा में अनुमान ईश्वर को कैसे सिद्ध कर सकता है ? इसी भाव को अपने मन में रखकर मुनि जैमिनि ने ईश्वर परक अनुमान का तथा ईश्वर से जगत के उदय उस्त आदि होते हैं । इन सब वैशेषिक सिद्धान्तों का सैकड़ों अकाटय युक्तियों से खण्डन किया है । आशय यह है कि जैमिनि

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

मुनि श्रुति सिद्ध ईश्ष का अलाप खण्डन नहीं करते । किन्तु तार्किक सम्मत श्रुति हीन अनुमान का ही खण्डन करते हैं । इसी तरह मेरी समझ में उपनिषद रहस्य से जैमिनि का सिद्धान्त लेशमात्र भी विरुद्ध नहीं है । जैमिनि के इस गूढाभिप्राय को न जानकर विद्वान लोग उन्हें अनीश्वरवादी बतलाते हैं ।

विश्वरूपाचार्य मण्डन कहते हैं - क्या इतने से ही तत्त्व वेत्ताओं में श्रेष्ठ मुनि निरीश्वरवादी सिद्ध हो सकते हैं ? क्या कहीं पर भी उल्लू से कल्पित अन्धकार दिन में सूर्य के प्रकाश को मलिन कर सकता है ? कभी नहीं ।

इसी प्रकार अविद्वानों से कल्पित मिथ्या दोष जैमिनि मुनि को अनीश्वरवादी नहीं बना सकता । इस प्रकार जैमिनि मुनि के अभिप्राय को यतिवर शंकर स्वामी द्वारा स्पष्ट प्रतिपादित किये जाने पर शारदा मण्डन मिश्र तथा सब सभासद अति प्रसन्न हुए । परन्तु शंकर के कथन से मीमांसा के आशय को समझ लेने पर भी मण्डन के मन में फिर भी कुछ संदेह बना रहा । क्योंकि उनकी लगभग सम्पूर्ण आयु इसी कार्य में व्यतीत हुई थी । सहसा वे संस्कार कैसे दूर होते ? निरुत्तर होने पर भी पूर्ण विश्वास नहीं हो रहा था । इसलिये मानसिक शंका को निवृत्त करने के लिए **मुनि के वचन ही उनके अभिप्राय को जानने के लिए मण्डन मिश्र ने मुनि जैमिनि का स्मरण किया । जिससे मुनि शीघ्र मण्डन मिश्र के समीप प्रकट हुए ।**

मुनि जैमिनि कहते हैं - सुनो हे सुमते ! भाष्यकार शंकर के वचनों में संदेह मत कर । मेरे सूत्रों का जो अभिप्राय उन्होंने कहा है । वह इससे भिन्न नहीं है । ये यतिराज केवल मेरे ही अभिप्राय को नहीं जानते । बल्कि श्रुति और समस्त शास्त्रों का अभिप्राय भी जानते हैं । भूत भविष्यत तथा वर्तमान को जितना ये जानते हैं । उतना अन्य कोई भी नहीं जानता । मेरे गुरु वेदव्यास ने उपनिषद् का तात्पर्य - चिद्रूप एक रस ब्रह्म में है । ऐसा निर्णय किया है ।

मैंने उन्हीं से ज्ञान प्राप्त किया है । भला एक भी सूत्र उनके इस सिद्धान्त के विपरीत मैं कैसे कह सकता हूँ ।

मुनि जैमिनि मण्डन मिश्र को सम्बोधित करते हुए कहते हैं -

हे यशस्वी ! मेरे वचनों से संदेह त्याग दो । इस रहस्य को सुनो । संसार में निमग्न पुरुषों के उद्धारार्थ शरीर धारण करने वाले आचार्य शंकर को तुम शिव समझ ।

आद्ये सत्त्वमुनिः सतां वितरति ज्ञानं द्वितीय युगे

दत्तौ द्वापुरनामके तु सुमतिर्व्यासः कलौ शङ्करः ।

इत्येवं स्फुटमीरितोऽस्य महिमा शैवे पुराणे यत-

स्तस्य त्वं सुमते मते त्ववतरेः संसारवार्धि तरेः ।।

अर्थात सतयुग में कपिल मुनि ने विद्वानों को ज्ञान दिया । त्रेतायुग में दत्तात्रेय ने । द्वापर में सुमति व्यास ने । और इस कलि में आचार्य शंकर ने । इनकी महिमा शिव पुराण में वर्णित है । हे सुमते ! तुम इनके मत में प्रविष्ट होकर संसार समुद्र को पार कर ।

मण्डन मिश्र को सभा में इस प्रकार ज्ञान देकर तपोमुनि जैमिनि आचार्य शंकर को मन ही मन आलङ्गन कर अन्तर्धान हो गये ।

याज्ञिकों के सभा में प्रमुख मण्डन ने आचार्य शंकर को प्रणाम कर कहा -

विदितोऽस्ति संप्रति भवाञ्जगतः प्रकृतिर्निरस्तसमस्तातिशयः ।

अवबोधमात्रवपुरप्यबुधोद्धरणाय केवलमुपासतनुः ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

हे भगवन ! अब मैंने आपको जान लिया । आप संसार के कारण भूत हैं । समस्त विशेषों से रहित हैं । ज्ञान मात्र स्वरूप होते भी आपने अज्ञानियों के उद्धारार्थ यह वपु धारण किया है । वस्तुतः आप शरीर रहित हैं ।

हे यति राजेन्द्र ! आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत, ब्रह्म वा इदमग्र आसीत, सदेव सोम्येदमग्र आसीत, एकमेवाद्वितीयम इस प्रकार उपनिषद जिस एक अद्वितीय ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं । उसका तत्वमसि वाक्य आयुध है । और आप उसके प्रतिपालक हैँ । यदि ऐसा न होता । तो वह ब्रह्म पथ भ्रष्ट बौद्धों के प्रलाप रूपी अन्ध कूप में गिरकर न जाने कब का प्रलय पा चुका होता ।

प्रबुद्धोऽहं स्वप्नादिति कृतमतिः स्वप्नमपरं

यथा मूढ़ं स्वप्ने कलयति तथा मोहवशगाः ।

विमुक्तिं मन्ये ते कतिचिदिहलोकान्तरगतिं

हसन्त्येतान्दा सास्तव गलितमायाः परगुरोः ।।

प्रायः देखा जाता है कि मैं स्वप्न से जागा हुआ हूँ । यह विचार कर कोई मूढ़ व्यक्ति स्वप्न के भीतर एक दूसरे स्वप्न को देखता है । यही दशा कुछ अन्य भक्तों की है । जो मोह के वशीभूत होकर लोकान्तर गमन वैकुण्ठ प्राप्ति को मुक्ति मानते हैं । माया एवं मोह से रहित आप परम गुरु के दास ऐसे लोगों पर हंसते हैं । लोकान्तर प्राप्ति मात्र को मुक्ति मानना हास्यास्पद है ।

हे परमगुरो ! अविद्या रूपी राक्षसी ने अखिल विश्व के अधिपति ईश्वर को निगल डाला था । आपने उसके पेट को फाड़कर उसमें से ईश्वर को निकाल बाहर किया है । हनुमान ने राक्षसियों से घिरी सीता का केवल उद्धार किया । तो इतने से वे लोक में पूज्य हो गये । तो उससे भी आपकी महिमा कितनी अधिक होनी चाहिए । हे जगत की पीड़ा को नष्ट करने वाले ! तुम्हारी इस

प्रकार की अचिन्त्य महिमा को न जानकर मैंने आपके समक्ष जो अनुचित बाते की हैं । हे कृपासागर ! उन सबको आप क्षमा कर दें ।

अमित प्रतिभाशाली कपिल, कणाद, गौतम आदि ऋषि लोग भी जिस श्रुति के अर्थ का निर्णय करने में मोहित असमर्थ रहे । उसे भला परम शिव के अंश भूत विना आपके और कौन समर्थ हो सकता है । अल्प बुद्धि टीकाकारों की टीकाओं का प्रचार प्रबल सर्पों के समान है । उनके काटने से श्रुतियां जर्जर हो गई हैं । यदि वे आपके वचन रूपी सुधा के सिंचन से जीवित न हों । तो आत्मा में विश्वास रखने वाले विद्वान लोग कैसे विहार कर सकते हैं ?

कर्म रूपी यन्त्र पर चढ़कर मैं तप, शास्त्र, घर, स्त्री, पुत्र, भृत्य तथा धन आदि में अभिमान रखकर संसार रूप कूप में गिरा हुआ था । उससे आपने मेरा उद्धार कर लिया । पूर्व जन्मार्जित अनन्त पुण्यों के प्रभाव से मैंने आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया । तथा शास्त्रार्थ किया । अन्यथा यह सब कैसे हो सकता था ? इसलिए मैं अपने पुत्र, स्त्री, घर, धन, गृहस्थाश्रम, कर्तव्य कर्म इन सबको छोड़कर आपके चरण की शरण आता हूँ । कृपया तत्व का उपदेश कीजिये । मैं आपका किंकर हूँ । इस प्रकार बुद्धिमान मण्डन मिश्र ने विनीत तथा मधुर शब्दों से आचार्य शंकर का वर्णन किया । **जितेन्द्रिय शंकर ने मण्डन पर दया दृष्टि करते उनकी स्त्री की ओर देखा । आचार्य के आशय को समझकर वह बोली ।**

उभय भारती कहती हैं - हे यतीन्द्र ! मैं आपके अभिप्राय को समझती हूँ । मैंने इस भावी घटना को अपने बचपन काल में ही एक तपस्वी के द्वारा जान लिया था । एक समय मैं अपनी माता के पास बैठी थी । तब एक कान्तिमान तपस्वी वहाँ पर आये ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

माता ने उनका आतिथ्य कर लेने पर उनसे पूछा - हे त्रिकालज्ञ महात्मन ! मैं इस पुत्री के भाग्य के विषय में कुछ पूछना चाहती हूँ । इसकी आयुष्य कितनी होगी ? कितने पुत्रों तथा कैसे पति को यह प्राप्त करेगी ? धन धान्य सम्पन्न होकर यह कितने यज्ञ करेगी ?

क्षण भर आँखे मूंदकर उन तपस्वी ने कहा - हे देवी ! भूतल पर वैदिक मार्ग के उच्छिन्न हो जाने पर स्वयं ब्रह्मदेव { ब्रह्मा } वेद मार्ग के उद्धार के लिए मण्डन पण्डित के रूप में अवतरित होंगे । जिस प्रकार पार्वती ने शंकर की, लक्ष्मी ने विष्णु को प्राप्त किया । उसी प्रकार तुम्हारी कन्या भी अपने अनुरूप मण्डन को पति रूप में पाकर समस्त यज्ञों को करेगी । और पुत्रों के साथ बहुत दिनों तक प्रसन्न रहेगी । अनन्तर इस लोक में दुष्ट मतों द्वारा नष्ट हुए उपनिषद् सिद्धांत को स्थिर करने के लिए स्वयं आदि देव महादेव नर रूप लेकर अपने चरणों से इस भूतल को अलंकृत करेंगे । उस यति वेषधारी शंकर के साथ तुम्हारी कन्या के पति का शास्त्रार्थ होगा । जिसमें इसका पति परास्त होकर गृहस्थाश्रम का त्याग कर संसार को शरण देने वाले उन यति की शरण में जायेगा ।

इतना कहकर वे तपस्वी चले गये । हे विद्वन् ! वे सभी वचन उनके सत्य हुए हैं । तो यह वचन कैसे मिथ्या होगा ? परन्तु हे विद्वन ! अब तक तुमने पण्डितों में श्रेष्ठ मेरे पति को पूरी तरह से नहीं जीता है । क्योंकि मैं उनकी अर्धांगिनी हूँ । और उसे तुमने अभी तक नहीं जीता है । इसलिए मुझे जीतकर आप इन्हें अपना शिष्य बनाइये । यद्यपि तुम इस जगत के मूल कारण हो । सर्ववेत्ता परम पुरुष हो । फिर भी तुम्हारे साथ शास्त्रार्थ करने के लिए मेरा मन उत्कुण्ठित हो रहा है ।

शंकर स्वामी - यह तुम्हारा वचन अनुचित है । क्योंकि यशस्वी पुरुष महिला के साथ वाद विवाद नहीं करते ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

उभय भारती - हे भगवन ! अपने मत का खण्डन करने के लिए जो चेष्टा करता हो । चाहे वह स्त्री हो या पुरुष । उसके जीतने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिए । यदि अपने पक्ष की रक्षा करना अभीष्ट हो । इसलिए गार्गी { गार्गी ऋषि वचक्नु की कन्या थी । इसलिए उसका नाम गार्गी हुआ था { महाभारत शान्ति पर्व अध्याय 320 } के साथ महर्षि याज्ञवल्क्य ने शास्त्रार्थ किया । तथा सुलभा ने धर्मध्वज नाम वाले राजा जनक के साथ वाद विवाद किया । क्या स्त्री से शास्त्रार्थ करने पर भी वे यशस्वी न हुए ?

इसलिए युक्ति युक्त उभय भारती के वचनों को सुनकर श्रुति रूपी नदियों से पूर्ण समुद्र के समान आचार्य सर्वज्ञ शंकर देशिक ने सरस्वती उभय भारती के साथ शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया ।

शंकर स्वामी तथा उभय भारती का शास्त्रार्थ

एक दूसरे को जीतने के लिए उत्सुक शंकर और सरस्वती में वह शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ । जिसमें बुद्धि की चतुरता से शब्द की झड़ी लग रही थी । इन दोनों के विचित्र पद विन्यास और युक्तियों से भरे कथनों को सुनकर लोगों ने न तो शेषनाग को ही कुछ गिना । न सूर्य को । न बृहस्पति को । न शुक्राचार्य को । संसार में दूसरों की तो बात ही क्या है । सन्ध्या वन्दन आदि में निश्चित काल को छोड़कर । न दिन में और न रात में ही यह शास्त्रार्थ रुका । इस प्रकार शास्त्रार्थ करते इन दोनों विशिष्ट विद्वानों में 17 दिवस बीत गये ।

शारदा ने अनादि सिद्ध समस्त वेदों और समस्त शास्त्रों मे यतीन्द शंकर को अज्ञेय समझकर अपने मन में झट से विचार किया । अत्यन्त बाल्यावस्था में ही इन्होंने सन्यास ग्रहण किया है । श्रेष्ठ नियमों से कभी हीन नहीं हुए हैं । अतः कामशास्त्र में इनकी बुद्धि प्रवेश नहीं कर सकती । इसलिये मैं इसी

शास्त्र के द्वारा इन्हें जीतूँगी ।

उभय भारती कहती हैं - काम की कलाएँ कितनी है ? उनका स्वरूप कैसा है ? किस स्थान पर वे निवास करती है ? शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष उनकी स्थिति कहाँ कहाँ रहती है ? युवती में तथा पुरुष में इन कलाओं का निवास किस प्रकार से है ?

इस प्रकार बहुत विचार करने पर भी यति शंकर कुछ नहीं बोले । क्योंकि उन कलाओं के विषय में कुछ न कहूँ । तो अल्पज्ञ बनता हूँ । यदि उत्तर देता हूँ । तो मेरा यति धर्म का नाश होता है ।

कामशास्त्र को भली भाँति जानते भी **सर्वज्ञ शंकर देशिकेन्द्र संन्यासियों के नियम रक्षार्थ कामशास्त्र अनभिज्ञ की तरह उभय भारती { शारदा } से बोले -** आप मुझे इस विषय में एक मास की अवधि दीजिए (कहीं कहीं 6 मास की अवधि लिखी पाई जाती है) वादी लोग अवधि देने की प्रथा को मानते हैं । हे सुन्दरी ! उसके पश्चात तुम कामशास्त्र में अपनी निपुणता छोड़ देगी । एवमस्तु ! इस प्रकार उभय भारती ने स्वीकार कर लिया ।

तब योगीराज आचार्य शंकर देशिकेन्द्र अपने विद्वान शिष्यों के साथ योगबल से आकाश में भ्रमण करने लगे । उन्होंने किसी स्थान पर स्वर्ग से गिरे देवताओं के समान प्रलाप करती युवती स्त्रियों से घिरे दुखी मन्त्रियों से युक्त किसी मृतक राजा को देखा । रात में शिकार करने उस जंगल में आये थे । उस मृतक अमरुक राजा को देख यतिन्द्र शंकर अपने शिष्य सनन्दन { पद्मपाद } से बोले - जिसके घर में सौन्दर्य तथा सौभाग्य के आश्रयभूत सौ से अधिक सुन्दरियाँ निवास करती है । वही यह अमरुक राजा है ।

प्रविश्य कायं तमिमं परासोर्नृपस्य राज्येऽस्य सुतं निवेश्य ।

योगानुभावात्पुनरप्युपैतुमुत्कण्ठते मानसमस्मदीयम ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

हे सनन्दन ! सर्वज्ञता के निर्वाहरार्थ मेरा मन इस मृत राजा के शरीर में प्रवेश कर तथा सिंहासन पर इसके पुत्र को बैठाकर योग के प्रभाव से फिर लौट आने के लिए उत्कुण्ठित हो रहा है ।

इस प्रकार कहने पर उन यति प्रवर आचार्य शंकर से सनन्दन बड़े ही शान्ति से बोले - हे सर्वज्ञ ! आपको कोई विषय अज्ञात नहीं । तथापि यह यति के लिए उचित नहीं है ।

आचार्य शंकर पद्मपाद के वचन को सुनकर बृहस्पति के समान बोले - आपके वचन अत्यन्त प्रशंसनीय हैं । तो भी हे सोम्य ! मैं परमार्थ वचन कहता हूँ । उसे सावधान होकर सुनो -

संकल्प एवाखिलकाममूलं स एव मे नास्ति समस्य विष्णोः ।

तन्मूलहानौ भवपाशनाशः कर्तुः सदा स्याद्भवदोषदृष्टेः ।

अविचार्य यस्तु वपुरद्यहमित्यभिमन्यते जडमतिः सुदृढम ।

तमबुद्धतत्त्वमधिकृत्य विधिप्रतिषेधशस्त्रमखिलं सफलम ।

- संकल्प ही सब इच्छाओं का मूल है । वह कृष्ण के समान मुझमें नहीं है । संसार के पदार्थों में सदैव दोष दृष्टि रखने वाला पुरुष यदि किसी कार्य का कर्ता भी हो । तो भी उसे काम के मूल संकल्प के निवृत्त होने पर संसार बन्धन नहीं होता । जो जड़ बुद्धि पुरुष विना विचार के आत्म शरीर आदि में दृढ़ अहं अभिमान करता है । तत्व को न जानने वाले उस पुरुष को अधिकृत कर समस्त विधि निषेध शास्त्र सार्थक होता है ।

अर्थात - सर्वकामो यजेत, न सुरां पिवेत इत्यादि विधि निषेध शास्त्र अविद्वान को ही आश्रित कर प्रवृत्त होता है । **तस्मादविद्यावद्विषयाण्णेव प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि शास्त्राणि च { ब्रह्मसूत्र शाङ्कर भाष्यम 1 सूत्र }** में भी वर्णन है ।

भगवत्पाद आचार्य शंकर और मण्डन मिश्र के बीच शास्त्रार्थ

वेदान्त महा वाक्यों से उत्पन्न बुद्धि वाला पुरुष ब्रह्मचार्यादि आश्रमहीन, ब्राह्मणादि वर्ण रहित, मनुष्यत्वादि जातिहीन ज्ञान मात्र, अज एक रस आत्मा को अपना ही स्वरूप जानकर वेद के अत्युत्तम उपदेशों अर्थात वेदान्त उपदेशों में रमण करने वाला वह विद्वान विधि निषेध का दास नहीं बनता। तत्र को विधिः को निषेधः। ऐसी श्रुति भी है।

घट आदि मृत्तिका से उत्पन्न हुए हैं। जैसे ये मृत्तिका से भिन्न नहीं हैं। अर्थात इनकी मृत्तिका से भिन्न सत्ता नहीं हैं। वैसे ही परमात्मा से उत्पन्न हुआ यह जगत भी परमात्मा के विना त्रिकाल में नहीं है। अर्थात् इसकी पृथक सत्ता नहीं है। मिथ्या है।

वाचाऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् { घट आदि कार्य वाणी कथन मात्र है। सत्य तो केवल मृत्तिका ही है। } यह श्रुति की उदघोषणा है। कल्पित की अधिष्ठान से पृथक सत्ता नहीं होती। इस विषय में **तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः { ब्रह्मसूत्रम 2/1/14 }** इस सूत्र का **शांकर भाष्यम्** भी देखा जाये।

यह सम्पूर्ण जगत मिथ्या है। इस प्रकार हृदय में अनुसंधान करने वाला पुरुष कर्म फलों से किसी प्रकार भी लिप्त नहीं होता। जिस प्रकार स्वप्न काल में किये गये पुण्य पाप जागने पर मिथ्या बुद्धि से नष्ट होने के कारण कदाचिदपि शुभाशुभ फल के लिए नहीं होते। चाहे वह सौ अश्वमेध यज्ञ करे। अथवा चाहे अगणित ब्राह्मणों की हत्या करे। तो भी परमार्थ तत्व को जानने वाला पुरुष सुकृत और दुष्कृत से लिप्त नहीं होता। यह काण्ववचन है।

आचार्य शंकर अपने प्रिय शिष्य सनन्दन अर्थात पद्मपाद पर अनुग्रह करते हुए कहते हैं - हे सोम्य ! तत्व वित पुरुष वृत के शत्रु इन्द्र के समान न तो पापों से

अवनति को प्राप्त होता है । और न जनक के समान पुण्यों से बढ़ता है । वह पाप कर्म मैंने क्यों किया । तथा पुण्य कर्म क्यों नहीं किया । इस प्रकार वह ताप को प्राप्त नहीं होता ।

तत्सुकृतदुष्कृते विधुनुत एवं ह वाव न तपति किमहं साधु नाकरवं किमहं पापमकरवम { उपरोक्त श्लोक काण्व श्रुति के अनुसार है } ।

इसलिये हे सोम्य ! इस शरीर से कामशास्त्र का परिशीलन करने पर भी वह मेरे लिए दोष कृत नहीं होगा । तो भी शिष्ण पुरुषों के मार्ग का परिपालन करने के लिए मैं दूसरे के शरीर को प्राप्त कर यत्न करूँगा ।

यतिराज शंकर ऐसा कहकर दुर्गम पर्वत शिखर पर चढ़कर फिर बोले - हे शिष्यो ! यह देखो ! यह सुन्दर गुफा दिखाई दे रही है । जिसके आगे एक समतल शिला पड़ी है । उसके निकट ही स्वच्छ जल वाली, फल वाले वृक्षों से शोभित यह तलाई शोभा दे रही है । आप लोग यहीं पर रहकर मेरे इस शरीर की सावधानी से रक्षा करें । जब तक इस अमरुक राजा के शरीर में प्रविष्ट होकर कामकला का अनुभव करूँ ।

इस प्रकार शिष्य वर्ग को समझा कर आचार्यपाद ने उस गुफा में अपने शरीर को छोड़कर केवल लिङ्ग शरीर से युक्त हो प्रबल योग सामर्थ्य से राजा अमरुक के शरीर में प्रवेश किया ।

{ आतिवाहिक लिङ्ग शरीर, जो एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में प्रवेश करता है - 5 ज्ञानेन्द्रिय, 5 कर्मेन्द्रिय, 5 प्राण, मन तथा बुद्धि इस प्रकार 17 तत्त्वों का होता है । }

उन एकाग्र बुद्धि योगिराज शंकर ने अपने शरीर के अंगुष्ठ से आरम्भ कर दशम द्वार तक अपने प्राण वायु को ले जाकर ब्रह्मरन्ध्र से बाहर आकर अमरुक राजा के मृत शरीर में अंगुष्ठ पर्यन्त ब्रह्मरन्ध्र से धीरे धीरे प्रवेश किया

। इस आशय का स्पष्टीकरण योग सूत्र में इस प्रकार है -

बन्धकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः । योगसूत्र 3/38

शरीर बन्धन रूप है । इसका कारण धर्माधर्म है । इनकी शिथिलता समाधि बल से होती है । और चित्त के गमनागमन की नाड़ी के ज्ञान से योगी लोग चित्त को अपनी इच्छा से दूसरे शरीर में प्रवृष्ट कर सकते हैं ।

मृत राजा अमरुक का हृदय प्रदेश हिलने लगा । उसने धीरे धीरे आँख खोल दी । और पूर्व की तरह उठ खड़ा हुआ । परन्तु इस बीच के मर्म को कोई भी नहीं जान सका । इस प्रकार राजा को जीवित देख राज रानियाँ, मन्त्री आदि अति प्रसन्न हुए ।

तदन्तर राजा अमरुक मन्त्री और पुरोहितों के साथ शास्त्र विहित मांगलिक कृत्य समाप्त कर भद्रगज पर बैठ राजधानी को गया । नगर में जाकर राजा अमरुक ने अपने प्रियजनों को सान्त्वना दी । अन्य राजा लोग भी उसका शासन आदर से मानने लगे । उसने अपने अनुकूल मन्त्रियों के साथ पृथ्वी का इस प्रकार पालन किया । जिस प्रकार देवराज इन्द्र स्वर्ग का पालन करते हैं । राजा ने मन्त्रियों तथा राजकीय कर्मचारियों के साथ राज्य का भलीभाँति निरीक्षण कर प्रजा को संतुष्ट किया ।

सीमावर्ती राजा लोग भी सहर्ष अनुकूल व्यवहार करने लगे । इस प्रकार राजा की कार्य कुशलता देख मन्त्रीगण को यह संदेह उत्पन्न हुआ कि राजा मृत्यु को प्राप्त हो प्रजा के भाग्य से फिर जीवित हुआ । लेकिन यह राजा पहले की तरह प्रतीत नहीं होता । प्रत्युत अनेक दिव्य गुण सम्पन्न होने से अपूर्व प्रतीत हो रहा है । ययाति के समान याचकों को यह धन देता है । अर्थ को जानने वाला यह राजा देव गुरु बृहस्पति के समान बोलता है । अर्जुन के समान शत्रु

राजाओं को जीतता है । और शंकर के समान सभी को जानता है ।

सवनों के { यज्ञ में सोम रस को निकालना } अनन्तर राजा चारों ओर फैलने वाले दान पौरुष शौर्य धैर्य आदि अन्यत्र दुर्लभ आदर्श गुणों के द्वारा यह राजा साक्षात परम पुरुष परमात्मा के समान प्रतीत होता है । उनके प्रभाव से वृक्ष अपनी अनुकूल ऋतु के बिना ही फूलों के भार से लद गये है । गायें अधिक दूध देती है । पृथ्वी पर अभीष्ट वृष्टि होने से अन्न की वृद्धि होती है । सारी प्रजा अपने विहित कार्य में रत है । और कहाँ तक वर्णन किया जाये ? आज इस राज्य के प्रभाव से सब दोषों से युक्त यह कलिकाल भी त्रेता युग को अतिक्रमण कर वर्तमान है । अर्थात इस कलि में त्रेता से भी अधिक धर्म का आचरण हो रहा । इससे ज्ञात होता है कि कोई ऐश्वर्यवान पुरुष राजा के शरीर में प्रवेश कर पृथ्वी का पालन कर रहा है । यह पुरुष गुणों का समुद्र है । हमें ऐसा उपाय करना चाहिए । जिससे यह अपने पूर्व त्यक्त शरीर को फिर प्राप्त न करें । ऐसा निश्चय कर उन्होंने अपने सेवकों को यह आज्ञा दी कि जहाँ भी मृतक शरीर प्राप्त हो । उसे अति शीघ्र जला दिया जाय ।

राजा ने अपने बुद्धि कौशल से आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों पर पूर्ण रूपसे नियन्त्रण कर राज्य पूर्ण शान्ति स्थापित की । राजा के लिए यह उचित है कि प्रजा की प्रसन्नता के लिए उचित व्यवस्था करे । अब राजा ने अपने विश्वस्त मन्त्रियों को राज्य भार सौंपकर चिन्ता रहित हो स्वयं अन्तःपुर में प्रवेश किया । विलासिनी सुन्दर रमणियों से वात्सायन कामशास्त्र का भलीभाँति अनुभव किया । इस प्रकार करते हुए बहुत दिवस बीत गये ।

दूसरी ओर आचार्यपाद के शिष्यगण देह की रक्षा करते चिन्ता करने लगे कि कृपालु गुरुदेव अभी तक नहीं लौटे । जबकि एक मास से पाँच छः दिन अधिक हो चले हैं । हम लोग क्या करें ? कहाँ ढूँढें ? कहाँ जायें ? वे कहाँ रहते हैं ? ऐसा जानकर हमें कौन बताएगा । हम समुद्र से लेकर चारों ओर भूतल में खोजकर उन्हें जानने में कैसे समर्थ हो सकते हैं । कारण वे अन्य शरीर में

छिपे हुए हैं । अन्य मित्रों को इस प्रकार चिन्ता करते देख पद्मपाद बोले -

अनिर्विण्णचेताः समास्थाय यत्नं ।

दुष्प्रापमप्यवापुर्ह्यनिर्विण्णचिताः ।

हे मित्रों ! क्या आप लोग नहीं जानते कि उत्साही व्यक्ति यत्न करने से दुष्प्राप्य अर्थ को अवश्य प्राप्त कर लेता है । विघ्नों से बारम्बार ताड़ित किये जाने पर भी उत्साह भरे देवताओं ने दुर्लभ सुधा को प्राप्त कर लिया ।